आर्षग्रन्थावलि—संख्या १–२ जन० फर० १९२९

वेदप्रकाश

प्रथम भाग

(जीवन के सभी अङ्गों पर प्रकाश डालने वाले मन्त्रों का संग्रह)

श्री पं० राजारामजी द्वारा सङ्कलित

बाम्बे मैशीन प्रेस, मोहनलाल रोड लाहार में मैनेजर
शरतचन्द्र लखणपाल के प्रबन्ध से छपा ।

फाल्गुन सं० १९८५, सन् १९२९ ई०

प्रथमवार १५००]

[मूल्य १॥)

विषय सूची

दशमः प्रकाशः (सन्तान)

एकादशः प्रकाशः (सामाजिक जीवन)

अकारादि क्रम से मन्त्रों की अनुक्रमणिका ।

मन्त्र ढूंढने के लिए हर एक अक्षर की पट्टी पूरी देखो, क्रम में आगा पीछा छप गया है ।

वेद प्रकाश में क्या है ?

इस में चुने हुए वेद मन्त्र हैं जो कर्म उपासना और ज्ञान के सभी अंगों पर पूरा प्रकाश डालते हैं। किस प्रकार एक ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य का रक्षण और विद्या आदि का उपार्जन करना चाहिये ? किस प्रकार एक गृहस्थ को सन्तान का उत्पादन, पालन पोषण, शिक्षण, धर्म अर्थ काम का सेवन, और परिवार से प्रेम करना चाहिये ? और किस प्रकार हर एक मनुष्य को जाति और देश की सेवा करनी चाहिये और ये सारे कर्तव्य किस प्रकार के उच्च जीवन के साथ पूरे करने चाहियें ? और अन्ततः किस प्रकार के ज्ञान विज्ञान से हृदय को प्रकाशमान करके आत्मज्योति को प्रबुद्ध करना चाहिये जिस से आत्मा और परमात्मा का साक्षाद् दर्शन होकर मानुष जीवन की पूर्ण सफलता प्राप्त हो ? इन सब विषयों पर शुद्ध वैदिक प्रकाश इस ग्रन्थ में डाला गया है इसी से इस का नाम वेदप्रकाश रक्खा है। प्रत्येक विषय को सरलता से हृदयगत करने के लिए मन्त्रों का चुनाव विषयक्रम से करके समग्र ग्रन्थ को तीन भागों में विभक्त कर दिया है। उन में से यह प्रथम भाग है। इस में १३ प्रकाश हैं। विषय पहले प्रकाश का परमात्मा का स्वरूप उस की वन्दना और उस से प्रार्थना, दूसरे का धर्म के मूल स्तम्भ, तीसरे चौथे पांचवें का देवाराधन (परमेश्वर की आराधना), छटे का स्वस्तिवाचन शान्तिपाठ, सातवें का ब्रह्मचर्य, आठवें का विवाह, नवें का गृहाश्रम, दसवें का सन्तान, ग्यारहवें बारहवें तेरहवें का सामाजिक जीवन। इस प्रथम भाग में सारे मन्त्र ४८९ हैं। इसका नित्य पाठ करो, इससे आपको प्रति दिन नया प्रकाश मिलता रहेगा और आपका ब्रह्मयज्ञ पूर्ण होता रहेगा।

राजाराम

वेदप्रकाश

प्रथमः प्रकाशः

अनेक नामों से परमात्मा का कीर्त्तन और नाना विभूतियों
में उसके दर्शन

१—एक एवाग्निर्बहुधा समिद्धः,
एकः सूर्यो विश्वमनुप्रभूतः ।
एकैवोषाः सर्वमिदं विभाति,
एकं वा इदं विबभूव सर्वम् ॥

(ऋ० ८।५८।२)

एक ही अग्नि अनेक प्रकार से चमका है। एक ही सूर्य सब पर प्रभुता कर रहा है। एक ही उषा इस सब को

प्रकाशित कर रही है। वह एक है जिसकी यह सब विभूति है (सब में चमक रहा है)।

२—इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः,
अथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति,
अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥
(ऋ १। १६४। २२)

उसको इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं, वह दिव्य सुपर्ण गरुत्मान् है, उस एक होते हुए को ब्राह्मण अनेक प्रकार (के नामों) से बतलाते हैं। उसी अग्नि को यम और मातरिश्वा कहते हैं।

३—तदेवाग्निस्तदादित्यः, तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म, ता आपः स प्रजापतिः ॥
(यजु ३२। १)

वही अग्नि है, वही आदित्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही शुक्र है, वह ब्रह्म है, वह अप् (आपः=जल) है, वह प्रजापति है।

४—कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मण-
वर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च।
(अथ० १३। ४। १४)

५—य एतं देवमेकवृतं वेद । १५ ।

६—न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते १६

७—न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ।१७।

८—नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ।१८।

९—स सर्वस्मै विपश्यति यच्च प्राणिति यच्च न । १९ ।

१०—तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव । २० ।

११—सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ।२१।

४—कीर्ति और यश, जल और मेघ, ब्रह्मवर्चस, अन्न और भोग्य वस्तुएँ (उसके लिए हैं)।

५—जो इस एकस्वरूप देव को जानता है।

६—वह न दूसरा, न तीसरा, न चौथा कहलाता है।

७—न पाँचवाँ, न छटा, न सातवाँ कहलाता है।

८—न आठवाँ, न नवाँ, न दसवाँ कहलाता है।

९—वह उस सब पर अलग अलग दृष्टि डालता है, जो सांस लेता है और जो नहीं (लेता है)।

१०–यह सारा बल मे पूर्ण जगत् उसके आश्रित है, वह यह एक एकतत्त्व है एक ही है।

११—सारे देवता इसमें एकस्वरूप होते हैं।

नाना विभूतियों में अन्तरात्म-रूप से वर्तमान परमात्मा की वन्दना

१२—यस्य भूमिः प्रमा, अन्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं, तस्मै ज्येष्ठाय
ब्रह्मणे नमः । (अथ० १० । ७ । ३२)

१३—यस्य सूर्यश्चक्षुः, चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं, तस्मै ज्येष्ठाय
ब्रह्मणे नमः । ३३ ।

१४—यस्य वातः प्राणापानौ, चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीः, तस्मै ज्येष्ठाय
ब्रह्मणे नमः । ३४ ।

१२—भूमि जिसका पाओं है और अन्तरिक्ष उदर है। द्यौ को जिसने अपना मूर्धा (सिर) बनाया है, उस परब्रह्म को नमस्कार है।

१३—सूर्य और फिर २ नया होने वाला चन्द्र जिसका नेत्र है, अग्नि को जिसने अपना मुख बनाया है, उस परब्रह्म को नमस्कार है।

१४—वायु जिसका श्वास प्रश्वास है, अङ्गिरस् जिस का नेत्र हैं, दिशाओं को जिसने (चारों ओर के समाचार)

जितलाने वाली (श्रोत्र) बनाया है, उस परब्रह्म को नमस्कार है[1]।

१५—यो भूतं च भव्यं च, सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर् यस्य च केवलं, तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः। (अथ० १०।८।१)

जो उस सब का अधिष्ठाता है, जो पहले हो चुका है, और आगे होगा, जिसका अपना स्वरूप केवल दिव्य प्रकाश और दिव्य आनन्द है, उस परब्रह्म को नमस्कार है।

सन्मार्ग के लिये इष्टदेव से प्रार्थना—

१६—अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्, विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोधि अस्मज्जुहुराणमेनः, भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम। (ऋ १।१८९।१)

हे अग्ने! (प्रकाश के अधिष्ठाता!) ऐश्वर्य के लिये हमें शुभ मार्ग से चला, हे देव! तू सारे कर्मों को जानता है। उस पाप को जो मनुष्यों को टेढ़ा चलाता है हम से परे हटा दे, हम बार बार तुझे नमोवचन देते हैं।

---

१ हमारी वन्दना उस सर्वान्तर्यामी महादेव को है, जो इस समस्त ब्रह्माण्ड का स्वयं अन्तरात्मा बनकर और ब्रह्माण्ड को अपना शरीर बना कर इसका संचालन करता हुआ विराट् रूप में हमारे सम्मुख खड़ा है।

१७—परि माऽग्ने दुश्चरिताद् बाधस्व, आ मा सुचरिते भज। उदायुषा स्वायुषा, उदस्थाममृताँ अनु। (यजु । ४ । २८)

हे अग्ने ! दुश्चरित (खोटे कर्मों) से मुझे सब ओर से बचा, और सुचरित (भले कर्मों में) मुझे चारों ओर भागी बना। उच्चजीवन और पवित्रजीवन के निमित्त मैं अब उनकी ओर उठा हूं जो अमर होचुके हैं (जगत् में अपना नाम अमर कर गए हैं)।

१८—प्रतिपन्थामपद्महि, स्वस्तिगामनेहसम्। येन विश्वा परिद्विषः, वृणक्ति विन्दते वसु २९

हमने उस मार्ग को स्वीकार किया है, जो कुशल क्षेम (अमन चैन) का मार्ग है, जो पाप (बुराई, खटके) से शून्य है, जिस (पर चलने) से पुरुष सारे द्वेषों को परे हटाता है और ऐश्वर्य (वा नेकी को) को पाता है।

१९—स्वस्ति पन्थामनुचरेम, सूर्याचन्द्रमसाविव। पुनर्ददताऽघ्नता, जानता संगमेमहि।

(ऋ० ५।५१।१५)

सूर्य और चन्द्रमा की नाईं हम सुख से मार्ग पर चलें, और बराबर देने वाले, (बेमुखियों को भी—) न मारने वाले (पालने वाले), (सब के) जानने वाले (देव) के साथ सदा मिले रहें।

२०—अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं, तन्मे राध्यताम् । इदमहमनृतात् सत्य-मुपैमि । (यजु १।५)

हे अग्ने ! व्रतपते ! (व्रतों के पति-अधिष्ठाता) मैं व्रत का अनुष्ठान करूंगा, उसे कर सकूं, वह मेरा सिद्ध हो । यह मैं असत्य को त्याग कर सत्य की शरण लेता हूं ।

द्वितीयः प्रकाशः

(उच्च-जीवन के मूल स्तम्भ-श्रद्धा, मेधा, शिवसंकल्प और स्वाध्याय)

धर्म कार्यों को पूरा करने के लिए श्रद्धा बड़ा भारी बल है । यह वह आत्मबल है, जो मनुष्य को बड़े बड़े कठिन व्रत धारण करने का उत्साह और साहस देता है । श्रद्धावान् पुरुष अनेक विघ्नबाधाओं को चीरता हुआ, अपने लक्ष्य पर पहुँच कर ही रहता है । धर्म पर सच्ची और पूर्ण श्रद्धा ही पुरुष को महापुरुष बनाती है, और वही इसको परमात्मा से मिलाती है । सो उच्च जीवन पाने का मुख्य साधन यह है, कि जिस कार्य को तुम अपना धर्म समझते हो, उसे पूर्ण श्रद्धा के साथ करो ।

ऋ० १० । १५१—देवता—श्रद्धा

१—श्रद्धयाऽग्निः समिध्यते, श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि, वचसा वेदयामसि ।१।

श्रद्धा से अग्नि प्रदीप्त की जाती है। श्रद्धा से हवि होमी जाती है। हम अपने वचन से यह घोषणा देते हैं कि श्रद्धा ऐश्वर्य और सुख की चोटी पर रहती है।

२—प्रियं श्रद्धे ददतः, प्रियं श्रद्धे दिदासतः।
प्रियं भोजेषु यज्वसु, इदं म उदितं कृधि ।२।

हे श्रद्धे ! देते हुए का कल्याण हो और देना चाहते हुए का कल्याण हो। खाने पीने और दान देने वालों में कल्याण सदा बना रहे। हे श्रद्धे ! मेरे इस कहे को पूर्ण कर॥ (दान देने वाला तो फलभागी होता ही है, पर श्रद्धा का यह माहात्म्य है, कि देना चाहता हुआ भी फलभागी होता है, यदि वह पास न होने से नहीं देसका। परमात्मा हृदय के भाव को देखते हैं, धन के परिमाण को नहीं। हाँ जो धनी होकर दानी और श्रद्धावान् हैं, भलाई उनके लिए चारों ओर से आती है।

३—यथा देवा असुरेषु, श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे।
एवं भोजेषु यज्वसु, अस्माकमुदितं कृधि ।३

जैसे ऋत्विज् (परमात्मा की-) जीवनप्रद तेजस्वी शक्तियों पर श्रद्धा रखते हैं, इस प्रकार खाने पीने और दान देने वालों के विषय में मेरे इस कहे को पूर्ण कर।

४—श्रद्धां देवा यजमानाः, वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्याऽऽकूत्या, श्रद्धया विन्दते वसु ।४।

ऋत्विज् और यजमान-वायु जिनका रखवाला है-श्रद्धा

की उपासना करते हैं[1] । श्रद्धा को मनुष्य हृदय के अन्दर की सच्ची भावना से प्राप्त करता है, और श्रद्धा से ऐश्वर्य (कर्म फल) को पाता है ।

५—श्रद्धां प्रातर्हवामहे, श्रद्धां मध्यन्दिनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि, श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ।५।

श्रद्धा को हम प्रातःकाल, श्रद्धा को मध्यान्ह के समय और श्रद्धा को सायंकाल बुलाते हैं, हे श्रद्धे ! हमें इस लोक में सदा श्रद्धावान् बनाए रख ।

६—व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्यमाप्यते ।

(यजु १९ । ३०)

व्रत से दीक्षा को प्राप्त होता है । दीक्षा से दक्षिणा को प्राप्त होता है । दक्षिणा से श्रद्धा को प्राप्त होता है । श्रद्धा से सत्य पा लिया जाता है[2] ।

अथर्व ६ । १०८ देवता-मेधा

१—श्रद्धा से पूर्णहृदय होकर कर्म करते हैं ।

२—मैं सत्य ही बोलूंगा, मिथ्या कभी नहीं, ऐसा दृढ निश्चय धार उस पर नियम से चलना व्रत है । इस प्रकार के धर्मव्रतों को धारने से मनुष्य उच्चजीवन में प्रवेश करता है, यह दीक्षा हैं । इस दीक्षा से दक्षिणा (उच्च जीवन का आनन्दमय फल) मिलता है । इससे श्रद्धा परिपक्व होती है । ऐसी श्रद्धा से सत्य—"**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**" मिलता है ।

७—त्वं नो मेधे प्रथमा, गोभिरश्वेभिरागहि ।
त्वं सूर्यस्य रश्मिभिः, त्वं नो असि यज्ञिया ।१।

हे मेधे! तू गौओं घोड़ों के साथ पहले हमारी ओर आ। तू सूर्य की रश्मियों के साथ (हमारी ओर आ) तू हमारी यज्ञसाधिका (वा यजनीया) है।

मेधा—धारणा वाली बुद्धि, अर्थात् जो कुछ देखने सुनने जानने से अनुभव हुआ है, उसका स्मृतिरूप में अन्दर टिक जाना। ऐसी मेधा (पहले अनुभवों=तजर्बों-को समय पर सामने रख देने वाली बुद्धि) मनुष्य को लोक में मानुष ऐश्वर्यों (गौ घोड़े आदि) से सम्पन्न करती है और मनुष्य को पुण्य कर्मों में प्रवृत्त करती है, जिनके फलरूप आत्म-बल को वह अनुभव कर चुका है, और करता रहता है, और जिन के श्रेयस्कर होने में उसे सच्चा विश्वास है।

८—मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीम्, ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम् । प्रपीतां ब्रह्मचारिभिः, देवानामवसे हुवे । २ ।

मैं उस मुखिया मेधा को देवताओं की रक्षा के लिए बुलाता हूं जो भक्ति से भरी हुई, प्रार्थनाओं से बल दी गई, ऋषियों से सेवन की गई और ब्रह्मचारियों से पूरी तरह पान की गई है।

९—यां मेधामृभवो विदुः, यां मेधामसुरा विदुः ।

ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुः, तां मय्यावेशयामसि ।३

जिस मेधा को ऋभु (शिल्पी) जानते हैं। जिस मेधा को असुर (बल से पूर्ण-शूरवीर-पहलवान्) जानते हैं। जिस कल्याणी मेधा को ऋषि जानते हैं, उसको हम अपने अन्दर आवेश करवाते हैं[1]।

९—यामृषयो भूतकृतः, मेधां मेधाविनो विदुः।
तया मामद्य मेधया, अग्ने मेधाविनं कृणु।४।

जिस मेधा को लोगों के बनाने वाले[2] मेधावी ऋषि जानते हैं, उस मेधा से हे अग्ने! मुझे आज मेधावी बना।

मेधां सायं मेधां प्रातः, मेधां मध्यन्दिनं परि।
मेधां सूर्यस्य रश्मिभिः, वचसा वेशयामहे।५।

मेधा को सायं, मेधा को प्रातः, और मेधा को मध्यदिन के समय, मेधा को सूर्य की रश्मियों के साथ और वचन के साथ[3] हम अपने अन्दर प्रवेश कराते हैं,

१२—यां मेधां देवगणाः, पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधया, अग्ने मेधाविनं कुरु।

(य० ३२। १४)

---

१ ऐसी चतुर्मुखी मेधा हमारी रगरग में घुस जाए।

२ उच्च शिक्षाओं से लोक परलोक के योग्य बनाने वाले।

३ प्रत्यक्ष अनुभवों से और बहुश्रुतों के वचनों से।

जिस मेधा को देवगण और पितर सेवन करते हैं, उस मेधा से हे अग्ने ! आज मुझे मेधावी बना।

शिव संकल्प (यजु ३४ । १-६)

१३–यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं, तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं, तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।१।

जो दैव (दैवी शक्तिरूप) मन जागते हुए का दूर निकल जाता है (दूर दूर के विचार सामने लाता है) और वैसे ही वह सोए हुए का जाता है। दूर जाने वाला ज्योतियों का ज्योति (सारे इन्द्रियों का प्रकाशक) वह मेरा मन शिवसंकल्प (शुभ संकल्पों वाला) हो।

१४–येन कर्माण्यपसो मनीषिणः, यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां, तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।२।

कर्मशील मेधावी धीर पुरुष जिसके द्वारा परोपकार के कार्यों में और (जीवन के) संग्रामों में बड़े २ कर्म कर दिखलाते हैं, जो सारी प्रजाओं के अन्दर एक अपूर्व पूज्यसत्ता है, वह मेरा मन शिवसंकल्प हो।

१५–यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च, यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म

क्रियते, तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।३।

जो नये नये अनुभव कराता है, पिछले जाने हुए का स्मरण कराता है, और (संकटों में) धैर्यरूप बन जाता है, जो सारी प्रजाओं के अन्दर एक अमर ज्योति है, जिसके बिना कोई भी कर्म किया नहीं जाता,[1] वह मेरा मन शिव-संकल्प हो ।

१६–येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्, परिगृहीत-मम्‌तेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्त होता, तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।४।

जिस अमृत मन से यह भूत भविष्यत् वर्तमान सभी यथार्थ जाना जासकता है,[2] जिस से सात होता वाला यज्ञ

---

१ वाह्य इन्द्रिय अर्थों का ज्ञानमात्र कराते हैं, उनके हेय (त्यागने योग्य) उपादेय (ग्रहण करने योग्य) और उपेक्ष्य (उपेक्षा कर देने योग्य) होने का निर्णय मनही कराता है, जिस निर्णय के पीछे मनुष्य की उसमें प्रवृत्ति वा उससे निवृत्ति होती है । दूसरी ओर मन में पहले संकल्प उठता है, इस के अनन्तर मनुष्य वाणी से कहता और काया से करता है । हो सकता है कि कहे, पर करे नहीं, वा कर दिखलाए, पर कहे नहीं, पर यह कभी नहीं होता, कि मन में आए विना ही वाणी से कहे वा काया से कर दिखलाए; अत एव जब मन शिवसंकल्प हो तो मानस, वाचिक, कायिक सभी कर्म पुण्यमय बन जाते हैं !

२ वाह्य इन्द्रिय केवल वर्तमान विषयों का ज्ञान कराते हैं, मन वर्तमान के साथ भूत भविष्यत् के विषयों का भी ज्ञान कराता है ।

फैलाया जाता है[1], वह मेरा मन शिवसंकल्प हो।

१७–यस्मिन्नृचः सामयजूᳬषि यस्मिन्, प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिंश्चित्तᳬसर्वमोतं प्रजानां, तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।५।

जिसमें ऋचाएं, साम और यजु इस प्रकार टिके हुए हैं, जैसे रथ की नाभि में अरे, हां जिस में प्रजाओं की सारी स्मरणशक्ति प्रोई रहती है, वह मेरा मन शिवसंकल्प हो।

१८–सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्, नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं, तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।६।

सुशिक्षित सारथि जिस प्रकार वेगवान् घोड़ों को बागों से सीधे रस्ते पर चलाये जाता है, इस प्रकार जो मनुष्यों को लगातार चलता रहता है, जो हृदय में रहने वाला बड़ा फुर्तीला और बड़ा वेगवाला है, वह मेरा मन शिवसंकल्प हो।

स्वाध्याय

स्वाध्याय करने वाले को नित्य नया धर्मोपदेश मिल जाता है। धर्म में विश्वास बढ़ता है और हृदय विशाल होता है। स्वाध्याय करते समय मानो हम उस धर्माचार्य्य के सम्मुख बैठ कर उपदेश ले रहे होते हैं, जिसके वचनों का हम पाठ

---

१ जीवन यज्ञ के दो नेत्र, दो श्रोत्र, दो प्राण और एक जिह्वा ये सात होता हैं।

करते हैं, स्वाध्याय हमें इतनी श्रद्धा के साथ करना चाहिये, कि वे धर्म वचन हमारे हृदय में टिक जायँ और हमारा जीवन उनके अनुसार हो ।

अथर्व १।१ स्वाध्याय

१९–ये त्रिषप्ताः परियन्ति, विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां, तन्वो अद्य दधातु मे ।१।

जो तीन साते[1] सारे रूपों को धारण किये चारों ओर घूमते हैं, वाचस्पति उनके बल और उनके स्वरूपों को आज मुझ में स्थापन करे ।

२०–पुनरेहि वाचस्पते, देवेन मनसा सह ।
वसोष्पते निरमय, मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ।२।

हे वाचस्पते ! दिव्य मन के साथ फिर आ,[2] हे पुण्य के पति ! इसको टिकादे, जिससे कि जो कुछ (श्रुति से) सुना है वह मुझ में हो हां मुझ में ही हो ।

---

१ ये तीन साते क्या हैं यहां स्पष्ट नहीं है। सप्त दिशो नाना सूर्याः सप्त ऋत्विजः । देवा आदित्या ये सप्त । (ऋ ९।११४।३) इसमें जो सात दिशाएं, सात ऋत्विज् और सात आदित्य (मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, इन्द्र) कहे हैं और तैत्ति० ब्रा० २।८।३।८ में जो सात सिन्धु, सात लोक और सात दिशाएं कहीं हैं, उनका यहां प्रकरण नहीं । यहां स्वाध्याय के प्रकरण में वाक्सम्बन्धी तीन साते युक्त हो सकते हैं।

२ हम जब भी स्वाध्याय करें केवल वाक् का उच्चारण न करें किन्तु

२१—इहैवाभि वितनु, उभे आर्त्नी इव ज्यया ।
वाचस्पतिर्नियच्छतु, मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ।३।

यहां ही (मुझ में ही) उस (श्रुत) को तन दे, जैसे (धनुष के) दोनों सिरों को चिल्ले के साथ तनते हैं, वाचस्पति उसको (मुझ में) रोक देवे, जिससे कि मेरा सुना हुआ मुझ में हां मुझ में ही हो ।

२२—उपहूतो वाचस्पतिः, उपास्मान् वाचस्पति-र्ह्वयताम्। संश्रुतेन गमेमहि,मा श्रुतेन विराधिषि।४।

हम ने वाक् के पति को बुलाया है वाक् का पति हमें बुलावे, जिससे कि हम उसके साथ जुड़े रहें, जो कुछ हमने सुना है, उसके साथ मिले रहें । अपने सुने हुए (वेद शास्त्र आदि से) हम कभी अलग न होवें ।

तृतीयः प्रकाशः

देवाराधन (स्तुति प्रार्थना)—वरुण स्तोत्र

वरुण घेरने वाला, जो सब को घेर कर स्थित है, उस से कोई भेद छिपा नहीं रहता । वह धर्म का अधिष्ठाता है और कर्मानुसार फल देता है ।

वाचस्पति हमारे अन्दर आजाय, और ऐसा दिव्य मन हमें देवे, कि हमारा सुना हुआ हमारे अन्दर रच जाए ।

१—वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान, वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु। हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्वग्निं, दिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ। (ऋ ५। ८५। २)

वरुण ने जंगलों के ऊपर आकाश को फैलाया है (ताकि आकाश से उनको जीवन मिले और वे आकाश की ओर बढ़ें) उसने घोड़ों में वेग और गौओं में दूध स्थापन किया है। उसने हृदयों में दानाई और जलों में बिजली डाली है। उसने सूर्य को द्यौ में और सोम को पर्वत पर स्थापन किया है॥

२—नीचीनवारं वरुणः कवन्धं, प्रससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम्। तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा, यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम॥३॥

वरुण नीचे खुलने वाले कोश[1] को द्यौ, पृथिवी और अन्तरिक्ष में से भेजता है, उससे वह सारे भुवन का राजा भूमि को रसवाली बना देता है जैसेकि वर्षा खेती को (हरा भरा बना देती है)

३—उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां, यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित्। समभ्रेण वसत पर्वतासः,

---

१ नीचे खुलने वाला कोश जीवों की सृष्टि का स्रोत जो द्यौ, पृथिवी और अन्तरिक्ष से आता है। यह सृष्टि भूमि पर ही है, इस लिये नीचे की ओर खुलने वाला कहा है।

तविषीयन्तः श्रथयन्त वीराः ।४।

वरुण जब दूध को चाहता है[1] तो भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ को सेचन कर देता है। पर्वत मेघ से ढक जाते हैं और वीर अपना बल दिखलाते हुए उन को ढीला कर देते हैं।

४—इमामूष्वासुरस्य श्रुतस्य, महीं मायां वरुणस्य प्रवोचम् । मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे, वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ।५।

यह मैंने देवताओं के अधिपति यशस्वी वरुण की महिमा वाली माया का वर्णन किया है, आकाश में स्थित हुए जिसने सूर्य से पृथिवी को मापा है[2] जैसे मान से मापते हैं।

५—इमामूनु कवितमस्य मायां, महीं देवस्य नकिरा दधर्ष । एकं यदुद्ना न पृणन्त्येनीः, आसिञ्चन्त्यवनयः समुद्रम् ।६।

इस, सब से बढ़ कर जानने वाले देव की महिमा वाली माया को कोई नहीं उलांघ सकता, देखो बहती हुई

---

१ दूध को चाहता है जब पृथिवी रूपी गौ से घास, अनाज और फल रूपी दूध दोहना चाहता हैं। वीर मरुत (Monsoon) पर्वतों मेघों को खोल देते हैं।

२ सूर्य का प्रकाश पृथिवी के चारों ओर घूमता हुआ पृथिवी को इस प्रकार मापता है जैसे फीते से खेत को मापते हैं।

नदियें अपने प्रवाहों से एक समुद्र को नहीं भरती हैं जोकि उसमें अपने जल डालती हैं[१]।

६—अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा, सखायं वा सद्-मिद् भ्रातरं वा। वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा, यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत्॥७॥

हे वरुण ! यदि हमने अपने किसी बालमित्र, स्नेही वा साथी वा भाई वा पड़ोसी वा किसी पराये के विरुद्ध कभी कोई पाप किया है, उसको ढीला करके उतार दे।

७—कितवासो यद् रिरिपुर्न दीवि, यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म। सर्वा ता विष्य शिथिरेव देव, अधा ते स्याम वरुण प्रियासः। (ऋ ५।८५।८)

जो हमें लोगों ने ठगा है (मिथ्यादोष लगाया है) जुआरिये जैसाकि खेल में ठगते हैं, जो हमने जान बूझ कर वा विन जाने भूल की है, हे देव ! उन सब पापों को ढीले बन्धनों की नाईं खोल दे, जिससे हे वरुण ! हम तेरे प्रिय बनें।

८—न त्वदन्यो कवितरो, न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन्। त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ, सचिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय। (अथ० ५।११।४)

---

१ समुद्र भाप बनता रहता है और भाप जल बन कर फिर समुद्र में पहुंचते रहते हैं, यह उसकी माया है।

हे प्रकृति के मालिक वरुण ! तुझ से बढ़ कर कोई धर्ममार्ग का द्रष्टा नहीं है। तू उन (प्रत्यक्षपरोक्ष) सारे भुवनों को जानता है, अद्भुत शक्तियों वाला जन भी तुझ से डरता है।

(ऋग्० १। २५)—देवता वरुण

९—यच्चिद्धि ते विशो यथा, प्र देव वरुण व्रतम्।
मिनीमसि द्यवि द्यवि ।१।

१०—मा नो वधाय हत्नवे, जिहीळानस्य रीरधः।
मा हृणानस्य मन्यवे ।२।

जो कुछ तेरा नियम[1] है देव! वरुण, हम दिन दिन तोड़ते हैं—।१। जैसा कि सभी मनुष्य, उसके लिए हमें मृत्यु का लक्ष्य न बना, तू जो विरुद्ध जाने वाले को मारता है; और न क्रुद्ध होकर अपने क्रोध का लक्ष्य बना।

११—परा हि मे विमन्यवः, पतन्ति वस्य इष्टये।
वयो न वसतीरुप ।३।

(महासंकटों में भी) शान्ति से भरी मेरी स्तुतियां पुण्यतम जीवन की प्राप्ति के लिए इस प्रकार उड़ कर (वरुण की ओर) जाती हैं जैसे (सांझ को) पक्षी अपने घोंसलों की ओर।

---

१ सब जग भुल्लनहार है इक अभुल्ल कर्तार। संकट सदा किसी भूल का ही फल होता है, पर जो भूल जान बूझ कर नहीं, किन्तु अनजानपन में हुई है उसमें यह प्रार्थना आस्तिकहृदय से स्वत एव निकलती है।

१२–कदा क्षत्रश्रियं नरम्, आ वरुणं करामहे ।
मृळीकायोरुचक्षसम् ।४।

कब हम क्षत्र बल से पूर्ण शोभा वाले (सारे विश्व पर सच्चा शासन करने वाले) वीर वरुण को कृपा के लिए अपनी ओर झुकाएँगे, जिसकी (कृपा-) दृष्टि सब पर होती है (वह सब का अधिपति, वरुण सर्वज्ञ है और सब पर शासन कर रहा है अन्तर्यामी, सर्वज्ञ है)

१३–वेदा यो वीनां पदम्, अन्तरिक्षेण पतताम् ।
वेद नावः समुद्रियः ।७।

जो आकाश (मार्ग) से उड़ कर जाते हुए पक्षियों[1] के खोज को जानता है और समुद्र का अन्तरात्मा होकर जहाज़ के खोज को जानता है ।

१४–वेद मासो धृतव्रतः, द्वादश प्रजावतः ।
वेदा य उपजायते ।८।

अपने नियमों को पालने वाला (वरुण) बारह महीनों और उनकी प्रजाओं[2] को जानता है और उसको जानता है जो उनके पास उत्पन्न होता है[3] ।

---

१ समुद्र के जहाजों के साहचर्य से आकाश में उड़ने वाले पक्षी हवाई जहाज भी सम्भावित हैं ।

२ उपज । ३– तेरहवां महीना मलमास, जो चान्द्र वर्ष को सौरवर्ष के साथ मिलाने के लिये प्रति तीसरे वर्ष बढ़ाया जाता है ।

१५—वेद वातस्य वर्तनिम्, उरोर्ऋष्वस्य बृहतः।
वेदा य अध्यासते ।९।

वह चारों ओर फैले हुए, ऊंचे और शक्तिमान् वायु के मार्ग को जानता है और उनको[1] जानता है जो ऊपर रहते हैं।

वह अपनी प्रजा पर शासन कैसे करता है—

१६—निषसाद धृतव्रतः, वरुणः पस्त्यास्वा।
साम्राज्याय सुक्रतुः ।१०।

नियमों का पालने वाला, पवित्र ज्ञान और पवित्रकर्मों वाला वरुण साम्राज्य (सारी प्रजाओं पर एकाधिपत्य राज्य करने) के लिए अपनी प्रजाओं के अन्दर सर्वत्र बैठा हुआ है।

१७-अतो विश्वान्यद्भुता, चिकित्वाँ अभिपश्यति।
कृतानि या च कर्त्वा ।११।

यहां से (प्रजाओं के अन्दर बैठा हुआ) वह चेतनावान् सब अद्भुतों (अद्भुत कार्यों) पर दृष्टि डालता है जो किये जा चुके हैं और जो किये जाने हैं।

इस सदा अंग संगी देव से सुमार्ग पर चलाने की प्रार्थना—

१८—स नो विश्वाहा सुक्रतुः, आदित्यः सुपथा करत्। प्रण आयूंषि तारिषत् ।१२।

---

१ वायुमण्डल से ऊपर के लोकों और उनमें रहने वालों।

वह पवित्रज्ञान और पवित्रकर्मों वाला आदित्य सब दिन हमें[1] सीधे मार्ग से चलाए और हमारी आयुओं को लम्बा करे।

१९–बिभ्रद् द्रापिं हिरण्ययम्, वरुणो वस्त निर्णजम्।
परि स्पशो निषेदिरे ।१३।

सुनहरी कवच को धारे हुए वरुण ने चमकती हुई पोशाक पहनी हुई है और गुप्तचर उसके चारों ओर बैठे हैं[2]।

२०–न यं दिप्सन्ति दिप्सवः, न द्रुह्वाणो जनानाम्।
न देवमभिमातयः ।१४।

जिस देव को न दम्भी (मिथ्याचारी, मक्कार) धोखा दे सकते हैं, न लोगों के द्रोही, न अकड़ वाले।

२१–उत यो मानुषेष्वा, यशश्चक्रे असाम्या।
अस्माकमुदरेष्वा ।१५।

और जिसने मनुष्यों में अपना पूर्ण यश स्थापन किया है[3], और हमारे उदरों में स्थापन किया है।

---

१ सारे परिवार के लिए प्रार्थना होने से बहुवचन है!

२ राजा के रूप में अलङ्कार से वर्णन है। सुनहरी कवच सूर्य हैं चमकीली पोशाक नक्षत्रगण, तारागण और ग्रहगण हैं। गुप्तचर मनुष्यों के घट (अन्तःकरण) जिनसे वह घट घट का अन्तर्यामी कहलाता है।

३ सारी प्रजाओं से मनुष्य को उत्तम और उत्तरोत्तर उन्नति का

२२—परा मे यन्ति धीतयः, गावो न गव्यूतीरनु ।

इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ।१६।

मेरी स्तुतियां सब पर दृष्टि रखने वाले देव की ओर बड़ी चाह से चली जा रही हैं जैसे गौएँ चरागाहों की ओर बड़ी चाह से जाती हैं ।

२३—दर्शं नु विश्वदर्शतं, दर्शं रथमधिक्षमि ।

एता जुषत मे गिरः ।१८।

मैंने उसे अब देख लिया है जिसको सब देख सकते हैं[1] । पृथिवी के ऊपर उसके रथ को देख लिया है। उसने मेरी स्तुतियों को प्यार किया है ।

२४—इमं मे वरुण श्रुधी, हवमद्या च मृळय ।

त्वामवस्युराचके ।१९।

हे वरुण ! मेरे इस बुलावे को सुन और मेरे लिए आज

अधिकारी बना कर अपनी महिमा दिखलाई हैं और हमारे उदरों में जीवन की रक्षा और वृद्धि के लिये अद्भुत यन्त्रालय बना कर अपना कौशल दिखलाया है ।

१ यह उस दर्शन से अभिप्राय है जो उस देव के प्रेम में रंगे हुए उसके भक्तों को दिव्य दृष्टि से प्राप्त होता हैं जैसाकि यहां भी **'विश्वदर्शतं'** कहा हैं । इस पृथिवी पर उसी का चक्र चल रहा है वही इस पर शासन कर रहा हैं ।

कृपावान् हो । तेरी सहायता चाहते हुए मैंने तुझे पुकारा है ।

२५–त्वं विश्वस्य मेधिर !, दिवश्च ग्मश्च राजसि । स यामनि प्रतिश्रुधि । (ऋ० १।२५।२०)

हे सर्वज्ञ ! तू द्यौ और पृथिवी पर राज्य कर रहा है तू सब पर राज्य कर रहा है, सो तू हमारी दौड़ धूप में (हमारी प्रार्थनाओं को) स्वीकार कर ।

वरुण की आज्ञा अटल है, उस पर चलने से ही आयु, धन और प्रजा की वृद्धि होती है और आज्ञा के तोड़ने से हानि दुःख और संकट आते हैं—

२६–त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा, ये च देवा असुर ये च मर्ताः । शतं नो रास्व शरदो विचक्षे, अश्याम आयूंषि सुधितानि पूर्वा । (ऋ०२।२७।१०)

हे शक्तिमन् वरुण ! तू सब का राजा है जो देवता हैं और मनुष्य हैं । हमें सौ वर्ष देखने के लिए दे, हम अच्छी स्थापन की हुई मुख्य आयुओं को भोगें ।

२७–तव व्रते सुभगासः स्याम, स्वाध्यो वरुण-तुष्टुवांसः । उपायन उषसां गोमतीनाम्, अग्नयो न जरमाणा अनुद्यून् । (ऋ० २ । २८ । २)

प्रकाश से पूर्ण आने वाली उषाओं के आने पर दिन

दिन अग्नियों की नाईं तेरी स्तुति करते हुए शुभ विचारों के साथ स्तोत्र गाते हुए हम हे वरुण ! तेरे नियम में सदा सौभाग्यवान् हों।

२८—विमच्छ्रथाय रशनामिवाग:, ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य । मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे, मा मात्रा शार्यपसः पुर ऋतोः ।५।

रस्सी की नाईं (बांधने वाले) पाप अपराध को मुझ से परे हटा दे जिससे हे वरुण ! हम तेरे ऋत (अटल नियम) के प्रवाह को सदा बढ़ाएं । मेरा, शुभ विचारों (के वस्त्र) को बुनते हुए का तागा कभी न टूटे । मेरे कर्म की मात्रा (मानुष-जीवन के) पूर्ण काल से पहले कभी न क्षीण हो ।

२९—अपो सुम्यक्ष वरुण भियसं यत्, सम्राळ् तावोऽनुमा गृभाय । दामेव वत्साद्विमुमुग्ध्यंहः, नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे ।६।

सारे भयों (खतरों) को हे वरुण ! मुझ से दूर परे हटा दे । हे सब के शासन करने वाले ! हे नियमों के मालिक ! मेरे ऊपर अनुग्रह कर । पाप को मुझ से इस प्रकार अलग कर, जैसे रस्सी से बछड़े को । तेरे बिना मैं आंख झपकने का मालिक नहीं हूं ।

३०—मा नो वधैर्वरुण ये त इष्टौ, एनः कृण्वन्त-

मसुर भ्रीणन्ति । मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म, वि षू मृधः शिश्रथो जीवसे नः ।७।

हे शक्तिमन् वरुण ! उन मारकशस्त्रों से हमें मत मार, जो तेरी आज्ञा में उसको मारते हैं, जो पाप करता है। हम मत कभी (धर्मपथ के दर्शक) ज्योति से परे हों, हमारे जीवन के लिये संग्रामों को सब ओर से मिटा दे ।

३१—पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि,माहं राजन्नन्य-कृतेन भोजम् । अव्युष्टा इन्नु भूयसी रुषासः, आ नो जीवान् वरुण तासु शाधि ।९।

उन सारे ऋणों को शोध दे जो मैंने स्वयं किये हैं। हे राजन् ! मत मैं दूसरे की कमाई से भोगूं। वे बहुत सी उषाएं जो अभी नहीं खिली हैं उनमें हे वरुण ! जब तक हम जियें स्वयं मार्ग दिखला[1] ।

३२—माहं मघोनो वरुण प्रियस्य, भूरिदाव्न आविदं शूनमापेः । मा रायो राजन्त्सुयमा दवस्थाम्, बृहद् वदेम विदथे सुवीराः । (ऋ०२।२८।११

मत कभी हे वरुण ! मैं धनी और दानी किसी प्यारे भाई बन्धु की निर्धनता अनुभव करूं। मत कभी हे राजन् !

---

१ अक्षरार्थ—जीते हुओं को आप शासन कर ।

मसुर भ्रीणन्ति । मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म, वि षू मृधः शिश्रथो जीवसे नः ।७।

हे शक्तिमन् वरुण ! उन मारक शस्त्रों से हमें मत मार, जो तेरी आज्ञा में उसको मारते हैं, जो पाप करता है। हम मत कभी (धर्मपथ के दर्शक) ज्योति से परे हों, हमारे जीवन के लिये संग्रामों को सब ओर से मिटा दे।

३१—पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि, माहं राजन्नन्य-कृतेन भोजम् । अव्युष्टा इन्नु भूयसी रुषासः, आ नो जीवान् वरुण तासु शाधि ।९।

उन सारे ऋणों को शोध दे जो मैंने स्वयं किये हैं। हे राजन् ! मत मैं दूसरे की कमाई से भोगूं। वे बहुत सी उषाएं जो अभी नहीं खिली हैं उनमें हे वरुण ! जब तक हम जियें स्वयं मार्ग दिखला[1]।

३२—माहं मघोनो वरुण प्रियस्य, भूरिदाव्न आविदं शूनमापेः । मा रायो राजन्त्सुयमा दवस्थाम्, बृहद् वदेम विदथे सुवीराः । (ऋ०२।२८।११)

मत कभी हे वरुण ! मैं धनी और दानी किसी प्यारे भाई बन्धु की निर्धनता अनुभव करूं। मत कभी हे राजन् !

---

१ अक्षरार्थ—जीते हुओं को आप शासन कर ।

नेक कमाई से कमाए और भले कामों में लगने वाले धन से मैं हीन होऊं। सदा हम सभा में अपने उत्तमवीरों (पुत्रों) समेत उदार बोलें।

धन जन बल के घमंड से जो वरुण की प्रजा को पीड़ा देता है, गर्वविदारक वरुण उसके गर्व को तोड़ते हैं और वह सिर के बल गिरता है। यदि वह चाहता है कि फिर से वरुण की कृपा का पात्र हो, तो उसके लिए यह प्रायश्चित्तमयी प्रार्थना है और समझ वालों के लिए भूल होते ही यह पश्चात्तापमयी प्रार्थना है—

३३—यदेमि प्रस्फुरन्निव, दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः।
मृळा सुक्षत्र मृळय। (ऋ० ७।८९।२)

हे वज्रधारी वरुण! मैं जो वायु से भरी हुई मशक की नाईं फूला फिरता हूं (व्यर्थ घमंड से भरा हुआ हूं वा व्यर्थ चिन्तन में लगा रहता हूं) उस मुझ पर दया कर, हे पवित्र शासन शक्ति वाले कृपा कर।

३४—क्रत्वः समह दीनता, प्रतीपं जगमा शुचे।
मृळा सुक्षत्र मृळय।३।

हे महिमा वाले हे पवित्र! आत्मबल की दीनता से मैं उलटा चला गया था उस मुझ पर दया कर हे पवित्र शासन शक्ति वाले कृपा कर।

३५—अपां मध्ये तस्थिवांसं, तृष्णा विदज्

जरितारम्। मृळा सुक्षत्र मृळय।४।

जलों के मध्य में ठहरे हुए मुझ तेरे स्तोता को प्यास घेरे हुए है (तेरी महिमा के प्रवाह के अन्दर भी तेरे प्रेम से कोरा रहा हूं) उस पर दया कर हे पवित्र शासन बल वाले कृपा कर।

३६—यत् किञ्चेदं वरुण दैव्ये जने, अभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि। अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम, मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः। (ऋ० ७।८९।५)

हम मनुष्य हैं इसलिए हे वरुण जो भूल हमने देवताओं के विषय में की है और अज्ञान से जो तेरे नियम को तोड़ा है उस पाप से हे देव! हमें हानि न पहुँचा।

३७—यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति, यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्। द्वौ सन्निषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः। (अथ० ४।१६।२)

जो खड़ा है, जो चल रहा है, जो धोखा देता है और जो छिप कर चलता है (आड़ में रह कर वार करता है) जो निधड़क चलता है, (राजा वरुण उन सब के हृदयों को देखते हैं) दो मनुष्य इकट्ठे बैठ कर जो गुप्त मन्त्रणा करते हैं राजा वरुण उनमें तीसरे होकर जानते हैं।

३८—उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञः, उतासौ द्यौर्बृहती

दूरे अन्ता । उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी,
उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ।३।

यह भूमि भी और वह द्यौ भी जिसके सिरे दूर हैं राजा वरुण की है। दोनों समुद्र (पृथिवी पर जल का और अन्तरिक्ष में वायु का) उसकी कुक्षी हैं। हां वह पानी की एक छोटी सी बूंद में समाया हुआ है।

३९–उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तात्, न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः। दिवस्पशः प्रचरन्ती दमस्य, सहस्राक्षा अतिपश्यन्ति भूमिम् ।५।

चाहे कोई द्यौ से परे निकल जाए, तौ भी वह राजा वरुण से नहीं छूटने पाएगा। द्यौ से इसके सहस्रों आंखों वाले गुप्तचर[१] यहां फिर रहे हैं जो भूमि से परे तक देखते हैं।

४०—नमः पुरा ते वरुणोत नूनम्,
उतापरं तुविजात ब्रवाम।
त्वे हि कं पर्वते न श्रितानि,
अप्रच्युतानि दूळभ व्रतानि ॥

(ऋ १।२८।८)

---

१ इसके गुप्तचर गुप्त से गुप्त रहस्यों को भी इस प्रकार ढूंढ पाते हैं जैसे कि सहस्रों आंखों से देखते हैं। ये गुप्तचर उसकी देखने की शक्तियां हैं।

हे सारी दिव्य विभूतियों में प्रकाशने वाले (तुविजात) वरुण ! पूर्व काल में हमने तुझे नमस्कार कहा है, अब तुझे कहते हैं आगे तुझे कहेंगे। क्योंकि हे भ्रान्तिरहित देव ! तेरे नियम तुझ में कभी विचल नहीं होते मानो कि पर्वत में गड़े हुए हैं।

चतुर्थः प्रकाशः

देवाराधन (स्तुति प्रार्थना) इन्द्र स्तोत्र—

इन्द्र जो बल का अधिपति, दुष्टों को दण्ड देने वाला और श्रेष्ठों का सहायक है वह हमारा सहायक हो—

१—आत्वेता निषीदत, इन्द्रमभि प्रगायत।
सखायः स्तोमवाहसः। (ऋ १।५।१)

हे स्तोत्रों के लाने वाले साथियो ! आओ आओ मिल बैठो और इन्द्र के लिये दिल खोल कर गीत गाओ।

२—सुरूपकृत्नुमूतये, सुदुघामिव गोदुहे।
जुहूमसि द्यवि द्यवि। (१।४।१)

शुभ कर्मों को करने वाले इन्द्र को दिन दिन हम अपनी सहायता के लिये बुलाते हैं जो हमारे लिए ऐसा है जैसा कि गौ दोहने वाले के लिए सुदुघा[1] गौ होती है।

---

१ सुदुघा—आसानी से दुही जाने वाली गौ (पंजाबी-खिल्ल गौ)। खिल्ल गौ को हर एक दोहने वाला आसानी से दोह लेता है इसी प्रकार इन्द्र

३—आ तू न इन्द्र वृत्रहन्, अस्माकमर्द्धमागहि । महान् महीभिरूति भिः । (४ । २२ । १)

हे रुकावटों के हटाने वाले इन्द्र शीघ्र हमारी ओर आ, तू जो महान् है महिमा वाली सहायताओं के साथ आ ।

४—वयमिन्द्र त्वे सचा, वयं त्वाभि नोनुमः । अस्माँ अस्माँ इदुदव ।४।

हे इन्द्र हम तेरे साथ रहते हैं[1] हम तुझे नमस्कार करते हैं, हमें हाँ हमें ऊंचा उठा कर हमारी रक्षा करो ।

५—यच्चिद्धि शश्वतामसि, इन्द्रसाधारणस्त्वम् । तं त्वा वयं हवामहे । (ऋ ४।३२।१३)

तू जो कि हे इन्द्र ! सब का सांझा है, उस तुझ को हम बुलाते हैं ।

६—यस्यामितानि वीर्या, न राधः पर्येतवे । ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा । (ऋ० १।२४।२१)

जिस की शक्तियें अपरिमित हैं, जिस की दात से कोई

से हम हर एक कामना आसानी से दोहते हैं जब श्रद्धाभक्तिपूर्वक उसे बुलाते हैं । इन्द्र शुभ कर्मों के करने वाले हैं इस लिये हमें भी शुभ ही कर्म करने चाहियें और उनके अनुष्ठान के लिये इन्द्र से सहायता मांगनी चाहिये ।

१ सुख दुःख में सम्पत्ति विपत्ति में कभी तुझे नहीं भूलते हैं ।

बढ़ नहीं सकता है। जिस की दक्षिणा ज्योति की नाईं सब के ऊपर है।

७—नकिरस्य शचीनां, नियन्ता सूनृतानाम्। नकिर्वक्ता न दादिति। (ऋ० ८।३२।१५)

इसकी शक्तियों और सच्चे उदार वचनों का कोई नियन्ता (हद्द बांधने वाला) नहीं है। कोई नहीं कह सकता कि उस ने मुझे नहीं दिया है।

८—स घा नो योग आभुवत्, स राये स पुरन्ध्याम्। गमद् वाजेभिरा स नः। (ऋ० १।५।३)

वह हमारी दौड़ धूप में हमारे चारों ओर हो (अंगसंग हो) वह ऐश्वर्य में हमारे अंगसंग हो और सब प्रकार के विचारों में हमारे अंगसंग हो। वह सब प्रकार के बलों के साथ हमारी ओर आवे।

९—एवा ह्यस्य सूनृता, विरप्शी गोमती मही। पक्वा शाखा न दाशुषे। (ऋ० १।८।८)

उसकी अनेक प्रकार की सच्ची उदारता भक्त के लिए गौओं से भरी हुई पृथिवी की नाईं और पकी हुई (फल से लदी और नीचे को झुकी हुई) शाखा की नाईं है।

१०—एवा हि ते विभूतयः, ऊतय इन्द्र मावते। सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे। (ऋ० १।८।९)

सचमुच हे इन्द्र ये तेरी विभूतियां * मेरे जैसे तेरे भक्त के लिए सहायताएँ हैं।

११–त्वं ह्येक ईशिषे, इन्द्र वाजस्य गोमतः।
स नो यन्धि महीमिषम्। (ऋ० ४।३२।७)

हे इन्द्र! तू ही एक दूध दही मक्खन वाले अन्न पर राज्य करता है सो तू हमें महिमा वाला अन्न दे।

१२–भूरिदा भूरि देहि नः, मा दभ्रं भूर्या भर।
भूरिदा असि वृत्रहन्।

१३–भूरिदा ह्यसि श्रुतः, पुरुत्रा शूर वृत्रहन्।
आ नो भजस्व राधसि। (ऋ० ४।३२।२०–२१)

हे इन्द्र! तू बहुत बड़ा देने वाला है, हमें बहुत बड़ा ऐश्वर्य दे। थोड़ा नहीं, बहुत बड़ा हमारे लिए ला। हे रुकावटों के नाश करने वाले! तू सदा बहुत बड़ा ही देना चाहता है।२०। हे रुकावटों के नाश करने वाले शूर! तू बहुत बड़ा देने वाला विख्यात है। हमें सफलता देने वाले (ऐश्वर्य) में सब ओर से भागी बना।

१४—इन्द्रश्च मृळयाति नः, न नः पश्चादघं नशत्। भद्रं भवाति नः पुरः। (ऋ० २।४१।११)

---

* विश्व के महिमा वाले, शोभा वाले और तेजस्वी पदार्थ।

जब इन्द्र हमारे ऊपर दयालु होगा, तब पाप हमारा पीछा नहीं करेगा और भलाई हमारे सामने रहेगी।

हमें इन्द्र पर ऐसा भरोसा होना चाहिये कि—

१५–उत ब्रुवन्तु नो निदः, निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद्दुवः । (ऋ० १।४।५)

१६–उत नः सुभगाँ अरिः, वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामे दिन्द्रस्य शर्मणि । (ऋ० १।४।६)

चाहे निन्दक हमें कहें कि तुम जो केवल इन्द्र क ही पूजते हो, (इस स्थान से और) अन्य स्थान से भी निकल जाओ ॥ ५ ॥ और चाहे तेरे भक्त जन हमें सौभाग्यवान् कहें, किन्तु हे अद्भुत कर्मों वाले इन्द्र ! हम (सारी अवस्थाओं में) तेरी शरण (छत्रछाया) ही में रहें।

सब प्रकार के योगक्षेम के लिए और संग्रामों में शत्रुओं पर विजय पाने के लिए इन्द्र की सहायता प्रार्थना—

१७–इन्द्रं वयं महाधने, इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् । (ऋ० १।७।४)

इन्द्र को हम बड़े संग्रामों में और इन्द्र को छोटे संग्रामों में बुलाते हैं जो हमारा साथी है और रुकावट डालने वालों पर वज्र धारता है।

१८–आ घा गमद् यदि श्रवद्, सहस्रिणीभिरू-तिभिः। वाजेभिरुप नो हवम्। (ऋ० १।७।८)

जब वह हमारी टेर को सुनेगा तो निःसंदेह अपनी सहस्रों प्रकार की सहायताओं और शक्तियों के साथ हमारी ओर आएगा।

१९–योगे योगे तवस्तरम्, वाजे वाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये। (ऋ० १।३०।७)

हर एक दौड़ धूप में और हर एक संग्राम में हे मित्रो! अपनी सहायता के लिए हम उस बड़ी शक्ति वाले इन्द्र को बुलाते हैं।

२०–इन्द्र वाजेषु नो अव, सहस्रप्रधनेषु च। उग्र उग्राभिरूतिभिः। (ऋ० १।७।४)

हे इन्द्र! संग्रामों में अपना तेज दिखलाते हुए तेज वाली सहायताओं से हमारी रक्षा कर, उन संग्रामों में जिन में कि सहस्रों उत्तम धन मिलते हैं।

२१–आश्रुत्कर्णश्रुधी हवम्, नू चिद् दधिष्व मे गिरः। इन्द्र स्तोममिमं मम, कृष्वा युजश्चि-दन्तरम्। (ऋ० १।१०।९)

हे सब ओर की सुनने वाले कानों वाले! मेरे इस बुलावे

को सुन । मेरी स्तुतियों को जल्दी स्वीकार कर । हे इन्द्र ! मेरे इस स्तोत्र को मित्र से भी अन्तरङ्ग बना ।

२२—विद्मा हि त्वा वृषन्तमम्, वाजेषु हवन श्रुतम् । वृषन्तमस्य हूमहे, ऊतिं सहस्रसातमाम् ।

(ऋ० १।१०।१०)

हम तुझ को सब से बढ़ कर शक्ति वाला और संग्रामों में पुकार के सुनने वाला जानते हैं, सो हम सब से बढ़ कर शक्ति वाले की सहायता को बुलाते हैं जो सहस्रों देती है ।

२३—सख्ये त इन्द्र वाजिनः, मा भेम शवसस्पते । त्वा मभिप्रणोनुमः, जेतारमपराजितम् ।

(ऋ० १ । ११ । २)

हे इन्द्र ! तेरी मित्रता में शक्तिमान् होकर हे शक्ति के मालिक ! हम किसी से न डरें । हम तेरी हाँ तेरी ही स्तुति गाते हैं जो सदा विजय पाता है और कभी नहीं हारा है* ।

२४—त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं, हवे हवे सुहवं शूर मिन्द्रम् । व्हयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं, स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः । (ऋ० ६।४७।११)

---

* शत्रुओं पर अपने विजय को परमात्मा की दात मान कर यह वचन कहे हैं ।

मैं बचाने वाले, सहायता देने वाले, संग्राम में अनायास बुलाने योग्य शूर इन्द्र को बुलाता हूं जिस शक्तिमान् को सब बुलाते हैं, वह उदार इन्द्र हमें कल्याण दे।

२५—इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः, सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः । बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु, सुवीर्यस्य पतयः स्याम । (ऋ० ६।४७।१२)

निज शक्ति से शक्तिमान् सब के जानने वाला इन्द्र अपनी रक्षाओं से हमारा सुरक्षक और सुसुखप्रद हो । वह हमारे शत्रुओं का नाश करे और हमें अभय करे और हम उत्तम वीर्य के स्वामी हों।

२६—तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्य, अपि भद्रे सौमनसे स्याम । स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे, आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु । (ऋ० ६।४७।१३)

हम सदा उस पूजनीय (भगवान्) की शुभ मति में और कल्याण लाने वाली कृपा में रहें। वह निज शक्ति से शक्तिमान् इन्द्र हमारे लिए सुरक्षक बने, दूर से ही हमारे शत्रुओं को अलग अलग भगा दे।

इन्द्र की महिमा, उस में अपनी भक्ति और उससे पाने योग्य कामनाओं का वर्णन—

२७—उपेदहं धनदामप्रतीतम्, जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि । इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैः, यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् । (ऋ० १।३३।२)

वह जो चढ़ाइयों में अपने स्तोताओं से पुकारने योग्य है उस इन्द्र को मैं उत्तम २ स्तोत्रों से नमस्कार करता हुआ (अपने मन से) उस अदृश्य धन दाता की ओर इस प्रकार उड़ा जाता हूं, जैसे श्येन (बाज़) अपने घोंसले की ओर उड़ता है ।

२८—इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा, शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः । सेदु राजा क्षयति चर्षणीनाम्, अरान् न नेमिः परि ता बभूव । (ऋ० १।३२।१५)

इन्द्र जिस की भुजाओं में वज्र है (पापियों को दण्ड देने के लिए सदा उद्यत है) वह इस सब का राजा है जो चलता है जो खड़ा है जो शान्त है और जो लड़ाका है । वही राजा सब मनुष्यों पर शासन करता है वह सब को इस प्रकार घेरे हुए है जैसे रथ की नेमि अरों को घेरे हुए होती है ।

२९—इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्याः, इन्द्रो अपामिन्द्र इत् पर्वतानाम् । इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणाम्, इन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः ।

(ऋ० । १० । ८९ । १०)

इन्द्र द्यौ पर इन्द्र पृथिवी पर शासन करता है । इन्द्र जलों पर और इन्द्र मेघों पर शासन करता है। इन्द्र ही बल में बढ़े हुओं पर और इन्द्र ही समझ में बढ़े हुओं पर शासन करता है। इन्द्र दौड़ धूप में और इन्द्र ही अमन चैन में पुकारने योग्य है।

३०-शाक्मना शाको अरुणः सुपर्णः, आ यो महः शूरः स्यादनीळः । यच्चिकेत सत्य मित् तन्न मोघं, वसु स्पार्ह मुत जेतोत दाता ।

(ऋ० १० । ५५ । ६)

अपनी शक्ति से शक्तिमान् (जो अपने काम में किसी से सहायता नहीं लेता) तेजस्वी, शरण लेने योग्य, महिमा वाला, विजयशील और (सर्वाधार होकर स्वयं) निराधार है। वह जो कुछ जानता और करता है सब सत्य है मिथ्या नहीं। वह स्पृहा के योग्य धन का विजेता और दाता है ।

३१-यो अर्यो मर्तभोजनम्, परा ददाति दाशुषे। इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु, विभजा भूरि ते वसु, भक्षीय तव राधसः । (ऋ० १।८१।७)

वह स्वामी जो अपने भक्त को मनुष्यों के सारे भोग प्रदान करता है, वह इन्द्र हमें दे। हे इन्द्र ! सब को बांट कर दे, अपने धन का हमें भागी बना।

३२—इमे त इन्द्र ते वयम्, ये त्वाऽऽरभ्य चरामसि प्रभूवसो । न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्, क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ।

(ऋ० १ । ५७ । ४)

हे प्रभूत धन वाले! ये हम तेरे हैं जो तेरा लड़ पकड़ कर चल रहे हैं। हे स्तुतियों के प्यारे तेरे बिना कोई हमारी स्तुतियों को नहीं पाता है। सो तू हमारे स्तोत्रों को प्यार कर जैसे पृथिवी अपने आश्रितों को प्यार करती है।

३३—भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मसि, अस्य स्तोतुर्मघवन् काममापृण । अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं ममे, इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे । (ऋ० १।५७।५)

तेरी शक्ति बहुत बड़ी है हे इन्द्र हम तेरे हैं हे धनदातः! अपने इस स्तोता की कामना को पूर्ण कर। यह बड़ा द्यौ तेरी महती शक्ति का अनुमान कराता है, और यह पृथिवी तेरे बल के सामने झुकी हुई है।

३४—शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम, तवेदिदमभितश्चेकिते वसु । अतः संगृभ्याभिभूत आभर, मा त्वायतो जरितुः काम मूनयीः ।

(ऋ० १ । ५३ । ३)

हे शक्तिमन्, अनेक कर्मों के करने वाले, सबसे बढ़कर प्रकाश वाले इन्द्र ! यह धन जो हमारे चारों ओर दिखलाई देता है तेरा ही है, इससे इकट्ठा करके हमारी ओर ला, मत अपने प्यार करने वाले स्तोता की कामना को ऊना बना।

इन्द्र एक अद्वितीय है वही पूजा के योग्य है—

३५--यो भोजनं च दयसे च वर्धनम्, आर्द्रा-दाशुष्कं मधुमद् दुदोहिथ। स शेवधिं निदधिषे विवस्वति, विश्वस्यैक ईशिषे सोऽस्युक्थ्यः ।

(ऋ० २।१३।७)

हे इन्द्र ! तू जो सदा हमें भोग और बुद्धि देता है और गीले से मधु से भरे हुए सूखे को दोहता है और अन्धकार के मिटाने वाले जन में अपनी निधि स्थापन करता है, सारे विश्व पर अकेला शासन करता है, ऐसा तू ही हमारी स्तुतियों के योग्य है।

३६—त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्याः, ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः। विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा, सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् । (ऋ० १।५२।१३)

तू ने पृथिवी को तोला है तू दर्शनीय वीरों वाले (सुन्दर नक्षत्रों वाले) बड़े द्यौ का मालिक है। तू ने सारे आकाश को अपनी महिमा से भर दिया है। निःसंदेह यह सत्य है कि तेरे जैसा कोई नहीं है।

३७--स रायस्त्वामुपसृजा गृणानः, पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्वः । पतिर्बभूथासमो जनानाम्, एको विश्वस्य भुवनस्य राजा । (ऋ० ६।३६।४)

हे इन्द्र हम तेरी स्तुति करते हैं, हमारे लिए ऐसे ऐश्वर्य का प्रवाह बहा दे, जो बहुतों के आनन्द और भलाई का हेतु हो। तू ही सारे जनों का अद्वितीय पति है, तू ही एक सारे भुवन का राजा है।

३८--न किरिन्द्र त्वदुत्तरः, न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् । न किरेवा यथा त्वम् । (ऋ० ४।३०।१)

हे रुकावटों (पाप अज्ञान आदि) के हटाने वाले इन्द्र ! तुझ से कोई बढ़ कर नहीं, तुझ से कोई बड़ा नहीं, न ही कोई तेरे सदृश है।

३९--इमे उ त्वा पुरुशाक प्रयज्यो, जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः । श्रुधी हवमाहुवतो हुवानः, न त्वावाँ अन्यो अमृत त्वदस्ति । (ऋ० ६।२१।१०)

हे सर्वशक्ते हे सब से बढ़ कर पूजनीय ! ये तेरे स्तोता (हम) स्तोत्रों से तेरी स्तुति करते हैं । हम तुझे ही पुकारते हैं। अपने पुकारने वालों की टेर सुन। हे अमृत ! तेरे सिवाय

तेरे जैसा और कोई नहीं है* ।

४०--अयुजो असमो नृभिः, एकः कृष्टीरयास्यः। पूर्वीरति प्रवावृधे, विश्वा जाता न्योजसा, भद्रा इन्द्रस्य रातयः । (ऋ० ८।६१।२)

वह एक है, उस के समान और कोई नहीं। वह अपने काम में किसी की सहायता नहीं लेता, न कभी थकता है। वह अपनी शक्ति के साथ अपनी प्रजाओं से बहुत आगे बढ़ा हुआ हैं। वह इन सारी व्यक्त वस्तुओं से बढ़ा हुआ है । उस इन्द्र के दान कल्याणकारी हैं।

इन्द्र हमारा नेता पिता, माता, सखा आदि सब कुछ है—

४१—इन्द्र क्रतुं न आभर, पिता पुत्रेभ्यो यथा। शिक्षा नो अस्मिन् पुरुहूत यामनि, जीवा ज्योतिरशीमहि । (ऋ० ७।३२।२६)

हे इन्द्र ! हमें ज्ञान और शक्ति से पूर्ण कर जैसे कि पिता पुत्रों को करता है । हे सब से बुलाए जाने वाले इस दौड़ धूप में हमें सीधा मार्ग दिखला, जिस से हम दीर्घजीवी होकर ज्योति को भोगें।

---

* न त्वावाँ अन्यः त्वदस्ति=' नहीं है तेरे जैसा सिवाय तेरे ' इसी की छाया है ' ला इला इल्लिल्ला=नहीं है अल्ला मगर अल्ला '।

४२—इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य, प्रणो नय प्रतरं वस्यो अच्छ । भवा सुपारो अति पारयो नः, भवा सुनीतिरुत वामनीतिः । (ऋ० ६।४७।७)

हे इन्द्र ! आगे चलने वाले की नाईं हमें अपने देखे मार्ग पर चला, हमें बहुत बड़े और उत्तम से उत्तम धन की ओर ले चल । आसानी से पार लगाने वाला बन कर हमें पार लंघादे । हमारे लिए उत्तम नीति (नेतृत्व) वाला और प्यारी नीति वाला हो ।

४३—इन्द्र मृळ मह्यं जीवातुमिच्छ, चोदय धिय मयसो न धाराम् । यत् किञ्चाहं त्वायुरिदं वदामि, तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् । (ऋ० ६।४७।१०)

हे इन्द्र ! मेरे ऊपर दया करो, (मुझे) जीता रखने की इच्छा करो । लोहे की धार की नाईं मेरी बुद्धि को धंसने वाली बनाओ । तेरी कामना करता हुआ मैं जो कुछ कहता हूं उसे स्वीकार करो, मुझे देवता वाला (अर्थात् तुझ देव को सदा अंगसंग देखने वाला) बना दो ।

४४—त्वं हि नः पिता वसो, त्वं माता शतक्रतो बभूविथ । अधा ते सुम्नमीमहे । (ऋ० ८।९८।११)

हे दयालो ! हे शतक्रतो (अनन्तकर्मन् !) तू हमारा

पिता है, तू हमारी माता है। तब हम तुझ से कल्याण मांगते हैं।

४५—त्वमिन्द्राभिभूरसि, त्वं सूर्यमरोचयः, विश्वकर्मा विश्वदेवो महानसि। (ऋ० ८।९८।२)

हे इन्द्र! तू (सब को) वश में रखने वाला है, तूने सूर्य को चमकाया है, तू सब का बनाने वाला, सब देवों का स्वामी सब से बड़ा है।

४६--तिष्ठा सु मघवन् मा परागाः, सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षि। पितुर्न पुत्रः सिचमारभेत, इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः। (ऋ० ३।५३।२)

हे ऐश्वर्य के स्वामी! सदा हमारे अंग संग रहो, हमें कभी अकेले न छोड़ो, प्रेम से निचोड़े सोम से तेरा यजन करता हूं, और पुत्र जैसे पिता के अञ्चल को पकड़ता है, इस प्रकार हे शक्तिमन् इन्द्र! मीठी वाणी से तेरा अञ्चल पकड़ता हूं।

४७—मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसो, अस्मान् कदाचनादभन्। विश्वा च न उपमिमीहि मानुष, वसूनि चर्षणिभ्य आ। (ऋ० १।८४।२०)

हे धर्म और धन के स्वामी! तेरे उदार धन और तेरी रक्षाएँ मत कभी हम से अलग हों, हे मनुष्यों के हितकारी! हमारे

सारे धनों को सब मनुष्यों (के धनों) से बढ़ कर उपमा के योग्य बना ।

४८—त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः, स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः । चकृषे भूमिं प्रति मानमोजसः, अपः स्वः परि भूरेष्यादिवः । (ऋ० १।५२।१२)

तू इस आकाशलोक के भी पार पहुंचा हुआ है । तेरी शक्ति तुझ में स्वतः सिद्ध है । रक्षा के लिए तेरा मन सदा उत्साह से भरा रहता है । तूने त्रिलोकी को अपने बल की प्रतिमा बनाया है । तू जल के प्रवाहों को, दिव्य प्रकाश को और द्यौ लोक को घेर कर स्थित है ।

४९—न हि नु ते महिमनः समस्य, न मघवन् मघवत्त्वस्य विद्म । न राधसो राधसो नूतनस्य, इन्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियं ते । (ऋ० ६।२७।३)

हे इन्द्र ! हम तेरी सम्पूर्ण महिमा को नहीं जानते, हे धन के स्वामी ! न तेरे ऐश्वर्य का पार पाते हैं,* न तेरी उस दात का पार पाते हैं जो नित्य नई नई आती है, तेरी शक्ति का पार कोई नहीं पाता है ।

५०—इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनाम्, अधिक्षमि

---

* अक्षरार्थ—विशेषरूप से नहीं जानते ।

विषुरूपं यदस्ति । ततो ददाति दाशुषे वसूनि, चोदद् राध उप स्तुतश्चिदर्वाक् । (ऋ० ७।२७।३)

इन्द्र जगत् का और मनुष्यों का राजा है। जो कुछ भांति २ का इस पृथिवी पर है, उससे वह अपने भक्त को धन देता है, वह हम से स्तुति किया हुआ अपनी दात हमारी ओर प्रेरे ।

५१—मा सख्युः शूनमाविदे, मा पुत्रस्य प्रभूवसो । आवृत्वद् भूतु ते मनः । (ऋ० ८।४५।३६)

हे प्रभूत धन के स्वामी ! न कभी मैं सखा को न पुत्र को अर्थी (निर्धन) देखूं । अपने मन को हमारी ओर मोड़ ।

५२—अद्याद्या श्वःश्वः, इन्द्र त्रास्व परे च नः । विश्वा च नो जरितॄन् सत्पते, अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः । (ऋ० ८।६१।१७)

हे इन्द्र हर एक आज के दिन, हर एक कल के दिन और उस से अगले दिनों में हमारी रक्षा कर । सभी दिन हम स्तोताओं की हे सन्तों के पालक दिन रात रक्षा कर ।

५३—मम त्वा सूर उदिते, मम मध्यन्दिन दिवः । मम प्रपित्वे अपि शर्वरे वसो, आ स्तोमासो अवृत्सत । (ऋ० ८।१।२९)

हे इन्द्र मेरे स्तोत्र सूर्योदय के समय, मध्यान्ह के समय, सायं समय, और रात्रि के समय तुझे अपनी ओर झुकाते हैं।

५४—इन्द्रमीशान मोजसा, अभि स्तोमा अनूषत। सहस्रं यस्य रातयः, उत वा सन्ति भूयसीः।

(ऋ० १।११।८)

अपनी निज शक्ति से सब पर ईशन करते हुए इन्द्र की हमारे स्तोत्रों ने स्तुति की है, जिस की दातें सहस्रों हैं हाँ इस से भी बढ़ कर हैं।

५५—इदं नमो वृषभाय स्वराजे, सत्य शुष्माय तवसे अवाचि । अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः, स्मत् सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम ।

(ऋ० १।५१।१५)

यह नमस्कार हम ने सच्चे बल वाले, ऊंची महिमा वाले शक्तिमान् स्वराट् (अपनी निज शक्ति से शासन करने वाले) के लिए उच्चारण किया है। इस (सम्मुख उपस्थित) संग्राम में हे इन्द्र ! हम अपने सारे वीरों समेत और अपने नेताओं समेत तेरी रक्षा में हों।

———

पञ्चमः प्रकाशः ।

देवाराधन (स्तुति प्रार्थना) सवितृस्तोत्र ।

१—आ विश्वदेवं सत्पतिं, सूक्तैरद्या वृणीमहे। सत्यसवं सवितारम् । (ऋ० ५।८२।७)

आज हम अपने सूक्तों से सब के देव सविता की स्तुति करते हैं जो धर्मियों का रक्षक है जिसकी आज्ञाएँ सच्ची हैं ।

२—विभक्तारं हवामहे, वसोश्चित्रस्य राधसः। सवितारं नृचक्षसम् । (यजु० ३० । ४)

हम सविता को पुकारते हैं जो सिद्धि देने वाले भाँति २ के धनों का बांटने वाला है और सब मनुष्यों पर दृष्टि रखता है।

३—अभि त्वा देव सवितर्, ईशानं वार्याणाम्। सदाऽवन् भागमीमहे । (ऋ० १।२४।३)

हे सदा सहायता देने वाले देव सवितः ! तू जो बहुमूल्य धनों का अधिपति है तुझ से हम अपना भाग लेने आए हैं।

४—तत् सवितुर्वृणीमहे, वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वधातमं, तुरं भगस्य धीमहे। (ऋ०५।८२।१)

५-अस्य हि स्वयशस्तरं, सवितुः कच्चन प्रियम् । न मिनन्ति स्वराज्यम् ।२।

सविता देव से हम उस भोजन को स्वीकार करते हैं जो उत्तम से उत्तम और सब से बढ़ कर सब का पुष्टि करने वाला है, और इस बांटने वाले की (सारी दातों को) मात कर देने वाली दात का हम ध्यान धरते हैं ।१। सविता की अद्भुत महिमा उस के निज के यश से पूर्ण है और सब को प्यारी है, उस के शासन को कोई नहीं टालते हैं ।

६—स हि रत्नानि दाशुषे, सुवाति सविता भगः । तं भागं चित्रमीमहे ।३।

सविता जो कि बांटने वाला है अपने भक्त की ओर रत्नों को प्रेरे, उस से हम आश्चर्य कर देने वाला भाग मांगते हैं।

७—अद्या नो देव सवितः, प्रजावत् सावीः सौभगम् । परा दुःष्वप्न्यं सुव ।४।

आज हे देव सवितः ! सन्तान सहित सौभाग्य को हमारी ओर प्रेर, और दुःस्वप्न (निकम्मे मनोरथों) को हम से परे हटा ।

८—विश्वानि देव सवितर्, दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आसुव ।५।

हे सवितः देव सारे दुरितों (दुर्गतियों, त्रुटियों, पापों, दुःखों) को हम से परे धकेल दे और जो भद्र (भलाई, सुगति,

बल, ऐश्वर्य, प्रजा, पुत्र, पशु, धन) है, उसे हमारी ओर धकेल दे ।

९—अनागसो अदितये, देवस्य सवितुः सवे । विश्वा वामानि धीमहि ।९। (ऋ० ५।८२)

सारे विश्व की जननी की दृष्टि में निर्दोष हुए हम सविता देव की आज्ञा में सारी सुहावनी वस्तुओं को प्राप्त हों।

१०—तत् सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्र चोदयात् । (ऋ० ३।६२।१०)

सविता देव के उस सब से श्रेष्ठ जाज्वल्यमान तेज का हम ध्यान धरते हैं, वह हमारी बुद्धियों को प्रेरे (बढ़ाए और शुभ कर्मों में लगाए) ।

११—देवस्य वयं सवितुः सवीमनि, श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने । यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदः, निवेशने प्रसवे चासि भूमनः । (ऋ० ६।७१।२)

हम सविता देव की श्रेष्ठ प्रेरणा के और धन दान के सदा पात्र हों, जो मनुष्यों और पशुओं को आराम देने और प्रेरने में महती शक्ति का मालिक है ।

१२—वाम मद्य सवितर्वाममु श्वः, दिवेदिवे

वाममस्मभ्यं सावीः। वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेः, अया धिया वामभाजः स्याम। (ऋ० ६।७१।६)

सविता हमारे लिए आज, कल और दिन दिन उत्तम धन प्रेरे। इस प्रार्थना से हे देव! हम उत्तम सुहावने और बहुत बड़े ऐश्वर्य के स्वामी हों, हम सभी उत्तम वस्तुओं के भागी हों।

१३—सविता पश्चात् सविता पुरस्तात्, सवितोत्तराततात् सविता धरात्तात्। सविता नः सुवतु सर्वतातिं, रासतां दीर्घमायुः। (ऋ० १०।३६।१४)

सविता हमारे लिए आगे से पीछे से ऊपर से नीचे से सब प्रकार का आरोग्य प्रेरे, सविता हमें दीर्घ आयु देवे।

देवाराधन—पूषस्तोत्र (पूषन् स्तोत्र)—

१४—इयं ते पूषन्नाघृणे, सुष्टुतिर्देव नव्यसी। अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते। (ऋ० ३।६२।७)

हे देदीप्यमान पूषन् देव! यह नई से नई सुन्दर स्तुति हम तेरे लिए बोलते हैं।

१५—यो विश्वाऽभि विपश्यति, भुवना सं च पश्यति। स नः पूषाऽविता भुवत्। (ऋ० ३।६२।१०)

जो सारे भुवनों पर अलग २ दृष्टि रखता है और सब को इकट्ठा देखता है, वह पूषा हमारा सहायक हो।

१६–यो नः पूषन्नघो वृकः, दुःशेव आदिदेशति । अप स्म तं पथो जहि । (ऋ० १।४२।२)

हे पूषन् जो पापी भेडिया (दुःखदायी) दुष्ट स्वभाव वाला हमें हानि पहुंचाता है उस को हमारे मार्ग से दूर हटा ।

१७—अप त्यं परिपन्थिनं, मुषीवाणं हुरश्चितम् । दूरमधिस्रुतेरज ।३।

रस्ता रोकने वाले, कुटिलता से भरे हुए उस डाकू को हमारे रस्ते से दूर हटा ।

१८–त्वं तस्य द्वयाविनः, अघशंसस्य कस्य चित् । पदाऽभितिष्ठ तपुषिम् ।४।

हे देव ! उस दुहरी वाणी वाले * पाप की नियत वाले के शरीर को पाओं से कुचल दे चाहे कोई हो ।

१९–अति नः सश्चतो नय, सुगा नः सुपथा कृणु । पूषन्निह क्रतुं विदः ।७।

पीछा करने वालों से हमें पार लंघा ले चल, हमारे शुभ मार्ग आसानी से चलने योग्य बना दे, हे पूषन् इस (हमारी रक्षा) में दृढ़ संकल्प लाभ कर ।

---

* कभी कुछ कभी कुछ कहने वाले वा एक को कुछ और दूसरे को कुछ कहने वाले धोखेबाज मक्कार ।

२०–अभि सूयवसं नय, न नवज्वारो अध्वने ।
पूषन्निह क्रतुं विदः ।८।

हमें उत्तम घास वाले (सरसब्ज़) देश की ओर ले चल, मार्ग में हमें कोई नया संताप न हो, हे पूषन् इस (हमारी रक्षा में) दृढ़ संकल्प को प्राप्त हो ।

२१–शग्धि पूर्धि प्रयंसि, शिशीहि प्रास्युदरम् ।
पूषन्निह क्रतुं विदः ।९।

हमारे लिए शक्ति धारण कर, हमें पूर्ण बना, हमें सब कुछ दे, हमें तेजस्वी बना, हमारे उदर को भरदे * हे पूषन् ! इस (कर्म) में दृढ़ संकल्प को प्राप्त हो ।

२२–न पूषणं मेथामसि, सूक्तै रभि गृणीमसि ।
वसूनि दस्ममीमहे । (ऋ० १।४२।१०)

हम पूषा पर कभी दोष नहीं लगाते * किन्तु सूक्तों से उस के गीत गाते हैं, उस अद्भुत कर्मों वाले से हम धन मांगते हैं ।

---

* इतना दे कि हम तृप्त हो जाएं ।

* संकट में भी हम पूषा के गीत ही गाते हैं, क्योंकि पूषा देव हमें सकट में डाल कर सचेत करते हैं जब कि हम उनके नियम तोड़ते हैं ।

२३–सं पूषन् विदुषा नय, यो अञ्जसाऽनुशासति।
य एवेदमिति ब्रवत्। (ऋ० ६।५४।१)

हे पूषन्! हमें ऐसे विद्वान् के साथ मिला जो सीधा अनुशासन करे और जो यह कहे कि यह ऐसे ही है (जिसे कोई भ्रम व संशय न हो)।

२४–यो अस्मै हविषाऽविधत्, न तं पूषापि-
मृष्यते। प्रथमो विन्दते वसु ।४।

जो हवि से उस की पूजा करता है पूषा उस को कभी नहीं भूलता, वह पहले धन को पाता है।

२५–शृण्वन्तं पूषणं वयम्, इर्यमनष्टवेदसम्।
ईशानं राय ईमहे ।८।

धनों पर ईशन करते हुए पूषा से हम याचना करते हैं, (जो पुकार के) सुनने वाला, सब पर दृष्टि रखने वाला है, जिस का धन कभी नष्ट नहीं होता।

२६–पूषन् तव व्रते वयं, न रिष्येम कदाचन।
स्तोतारस्त इह स्मसि। (ऋ० ६।५४।९)

हे पूषन् तेरे नियम में चलते हुए हम कभी हानि न उठाएं, हम तेरे यहां स्तोता हैं।

२७–परि पूषा परस्ताद्, हस्तं दधातु दक्षिणम् ।
पुनर्नो नष्टमाजतु (ऋ० ६।५४।१०)

पूषा दूर से अपना दायां हाथ हमारे चारों ओर रक्खे, हमारे खोये हुए को फिर हमारी ओर प्रेरे ।

———

षष्ठः प्रकाशः ।

स्वस्तिवाचन और शान्तिपाठ

जो इस ब्रह्माण्ड का बनाने वाला है वही हमारे शरीरों का बनाने वाला है। जिन तत्वों से उसने इस ब्रह्माण्ड को रचा है, उन्हीं से हमारे शरीरों को रचा है अतएव हमारा शरीर एक छोटा ब्रह्माण्ड है—'जो ब्रह्मंडे सोई पिंडे'। सो ब्रह्माण्ड और पिण्ड (शरीर) की अनुकूलता ही जीवन है और प्रतिकूलता ही मरण है। इस स्वस्तिवाचन और शान्ति-पाठ का तात्पर्य यह है कि हम अपने जीवनों को ब्रह्माण्ड के अनुकूल ढालें जिस से हमारा जीवन काल लम्बा हो और हमारे शरीर नीरोग हृष्टपुष्ट और फुर्तीले हों, विचार उज्वल हों, हम धन से सम्पन्न हों और धर्म पर चलते रहें । स्वस्ति=सु अस्ति=अच्छा होना—आरोग्य, ऐश्वर्य, सुख, कल्याण और हर्ष । शान्ति—अमन चैन ।

१—आनो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतः, अदब्धासो अपरीतास उद्भिदः । देवा नो यथा सद मिद् वृधे असन्, अप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे । (ऋ० १ । ८९ । १)

भले संकल्प हमें सब ओर से प्राप्त हों ऐसे संकल्प जो न धोखा दिये जाएं न रोके जाएँ अपितु फलते फूलते रहें, जिससे देवता सदैव हमारी वृद्धि के लिए हों और प्रमाद न करते हुए दिन दिन हमारे रक्षक हों।

२—देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्, देवानां रातिरभि नो निवर्तताम् । देवानां सख्य मुपसेदिमा वयम्, देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ।२।

सरल मनुष्यों को प्यार करने वाले देवों की कल्याणी सुमति (अनुग्रह बुद्धि) और उन का दान हमारी ओर मुड़े। हमने देवों की मित्रता पा ली है, वे देव हमारी आयु को चिर जीने के लिए बढ़ावें।

३—भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः, भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरै रङ्गै स्तुष्टुवाँसस्तनूभिः, व्यशेम देवहितं यदायुः ।८।

हे देवो ! हम कानों से भला सुनें, और हे पूज्यो ! हम आंखों से भला देखें। स्थिर अंगों और शरीरों (पुत्र पौत्रादि) के साथ सदा तुम्हारी स्तुति करते हुए उस आयु को भोगें जो देवताओं से नियत की गई है।

४—शतमिन्नु शरदो अन्ति देवाः, यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् । पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति, मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ।९।

(ऋ० १।८९।९)

हे देवो ! वे सौ ही वर्ष अब हमारे सामने हैं, जिन में तुम हमारे शरीरों का बुढ़ापा उत्पन्न करते हो, और जिन में पुत्र पितर हो जाते हैं। सो मत हमारी चलती आयु को रस्ते में कोई हानि पहुँचने दो।

५—येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते पयः, पीयूषं द्यौ रदितिरद्रिबर्हाः। उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्तान्, आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये।

(ऋ० १०। ६३। ३)

अपने स्वस्ति के लिए उन आदित्यों[1] के साथ सदा हर्ष को अनुभव करते रहो जिन के लिए माता (पृथिवी) मधु से

---

१ आदित्य—अदिति=विश्व जननी प्रकृति, आदित्य उस की तेजोमयी शक्तियां तथा मुक्तात्मा और उच्च आत्मा।

भरा दूध देती है (पृथिवी के सार आहार से पुष्टि पा रहे हैं) और द्यौ-जिस की कोई सीमा नहीं और जो चट्टान की नाईं दृढ़ है-जिन के लिए अमृत देता है, जिन के बल की स्तुति की जाती है जो शक्ति से पूर्ण हैं और शुभ कर्मों में लगे रहते हैं।

६–नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा, बृहद् देवासो अमृतत्व मानशुः । ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ।४।

मनुष्यों पर दृष्टि रखने वाले, कभी आंख न झपकने वाले (अपने कार्य में सदा जागते हुए) जो अपनी योग्यता से देवता बन कर ऊंचे अमृतत्व को प्राप्त हुए हैं, वे ज्योतिरूपी रथों वाले, कहीं न रुकने वाली बुद्धि वाले, दोषों से रहित देव हमारे स्वस्ति के लिए आकाश के प्रकाश को पहनते हैं।

७—य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसः, विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः । ते नः कृतादकृतादे-नसस्परि, अद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ।८।

तुम जो शुद्ध चित्त वाले होकर इस भुवन पर शासन कर रहे हो, सारे जंगम और स्थावर के जानने वाले हो, वे तुम हे देवो ! आज हमें किये और न किये पाप से स्वस्ति के लिए बचाओ।

८—भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहे, अंहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् । अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं, द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ।९।

अनायास बुलाए जाने वाले इन्द्र को हम संग्रामों में बुलाते हैं जो पुण्य कर्मा दैव्य जन पाप से बचाने वाला है। अग्नि मित्र, वरुण और भग को (धन आदि की) प्राप्ति के लिए, द्यौ पृथिवी और मरुतों को स्वस्ति के लिए बुलाते हैं।

९—सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं, सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् । दैवीं नावं स्वरित्रामनागसम्, अस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ।१०।

उत्तम रक्षा करने वाली पृथिवी, दोषों से रहित और उत्तम आश्रय देने वाली द्यौ और उत्तम मार्ग पर चलाने वाली अदिति-यह जो उत्तम चप्पुओं से युक्त, डर खतरे से रहित, न चूने वाली दैवी नौका है इस पर हम अपने स्वस्ति के लिए चढ़ें।

१०—विश्वे यजत्रा अधिवोचतोतये, त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः । सत्यया वो देवहूत्या हुवेम, शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ।११।

हे सारे पूज्यो ! हमारी सहायता के लिए उदार वचन

बोलो, हानि पहुंचाने वाली हरएक टेढ़ी चाल से हमें बचाते रहो, तुम सुनते हुओं को हम अपनी रक्षा और कल्याण के लिए सच्ची देवहूति (देवताओं के बुलावे) से बुलाते रहें।

११–अपामीवा मप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः । आरे देवा द्वेषो अस्मद् युयोतन, उरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ।१२।

हरएक रोग को, अभक्ति को, कंजूसी को और पाप चाहने वाले की दुर्मति को दूर भगा दो। हे देवो शत्रुओं को हम से परे हटाओ और स्वस्ति के लिए हमें बहुत बड़ा शरण (पनाह) दो।

१२–अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते, प्र प्रजाभि-र्जायते धर्मणस्परि । यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिः, अति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ।१३।

हे आदित्यो ! वह मनुष्य हानि दुःख पीड़ा से रहित हुआ बढ़ता है और धर्म के पालन के पीछे सन्तान से फैलता है जिस को तुम सारे पापों से बचा कर स्वस्ति के लिए सुनीतियों से चलाते हो।

१३–स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु, स्वस्त्यप्सु

वृजने स्वर्वति । स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु, स्वस्ति राये मरुतो दधातन ।१५।

सजल मार्गों में, मरु स्थलों में हमें स्वस्ति हो, जलों में, दिव्य प्रकाश वाले संग्रामों में हमें स्वस्ति हो, पुत्रों के उत्पन्न करने वाले स्रोतों में हमें स्वस्ति हो, ऐश्वर्य के लिए हे मरुतो हमें स्वस्ति दो।

१४—तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं, धियं जिन्व- मवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसा मसद् वृधे, रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये । (यजु० २५।१८)

उस स्थावर जंगम के स्वामी बुद्धि के प्रेरक और सब पर शासन करने वाले को हम बुलाते हैं, जिससे वह पुष्टि करने वाला हमारे धनों की वृद्धि के लिए हो, और किसी से न धोखा दिया हुआ वह देव हमारी भलाई के लिए हमारा रक्षक और पालक हो।

१५—स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः, स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः, स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु । (यजु० २५ । १९)

बढ़े हुए यश वाला इन्द्र हमारे लिए स्वस्ति को, सब को जानने वाला पूषा हमारे लिए स्वस्ति को, जिस की नेमि (धारा)

को कभी हानि नहीं पहुंचती वह वायु (वा सूर्य ?) हमारे लिए स्वस्ति को, बृहस्पति हमारे लिए स्वस्ति को स्थापन करे।

१६—स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु, स्वस्ति गोभ्यः जगते पुरुषेभ्यः। विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु, ज्योगेव दृशेम सूर्यम्।

(अथ० १।३१।४)

हमारी माता के लिए और हमारे पिता के लिए कल्याण हो; कल्याण हो हमारे पशुओं के लिए पुरुषों के लिए और सारे जगत् के लिए। हमारा नेक कमाई का धन बहुत बड़ा हो। हम लगातार ही सूर्य के दर्शन पाते रहें (पूर्ण आयु भोगें और इन्द्रियों की शक्ति से हीन न हों)।

१७—शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु, शं न श्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु। शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु, शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः। (ऋ० ७।३५।८)

दूर देखने वाला सूर्य हमारे लिए शान्तिरूप होकर उदय हो, चारों प्रदेश हमारे लिए शान्तिरूप हों। न डोलने वाले पर्वत हमारे लिए शान्तिरूप हों, नदियें और जल हमारे लिए शान्तिरूप हों।

१८—शं नो देवः सविता त्रायमाणः, शं नो भवन्तूषसो विभातीः। शं नः पर्जन्यो भवतु

प्रजाभ्यः, शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ।१०।

हमारा रखवाला सविता देव हमारे लिए शान्तिरूप हो चमकती हुई उषाएँ हमारे लिए शान्तिरूप हों। मेघ प्रजाओं के लिए शान्तिरूप हों, सुखों का उत्पादक क्षेत्र का पति हमारे लिए शान्तिरूप हो।

१९–शन्नः सत्यस्य पतयो भवन्तु, शन्नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः । शन्न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः, शन्नो भवन्तु पितरो हवेषु । (ऋ०७।३५।१२)

सत्य के रक्षक हमारे लिए शान्तिरूप हों, घोड़े और गौएं हमारे लिए शान्तिरूप हों, सिद्धहस्त सुन्दर सुडोल बनाने वाले ऋभु (देवशिल्पी) हमारे लिए शान्तिरूप हों, हमारे बुलावों में पितर हमारे लिए शान्तिरूप हों।

२०–इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे । (यजु० ३६।८)

इन्द्र सब पर राज्य कर रहा है। वह हमारे मनुष्यों के लिए कल्याणकारी हो। हमारे पशुओं के लिए कल्याणकारी हो।

२१–शं नो वातः पवतां, शन्नस्तपतु सूर्यः । शन्नः कनिक्रदद्देवः, पर्जन्यो अभिवर्षतु । (यजु० ३६।१०)

वायु हमारे लिए शान्तिरूप होकर बहे, सूर्य हमारे लिए

शान्तिरूप होकर तपे, गर्जता हुआ देव मेघ शान्तिरूप होकर बरसे।

२२—शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी, शान्त मिद-मुर्वन्तरिक्षम्। शान्ता उदन्वतीरापः, सर्व मेव शमस्तु नः। (अथ० १९।९।१)

द्यौ शान्त हो, पृथिवी शान्त हो, यह विस्तृत अन्तरिक्ष शान्त हो, जलाशय शान्त हों (वृष्टि और नदियों के) प्रवाह शान्त हों, सभी कुछ हमारे लिए शान्त हो।

२३—शान्तानि पूर्वरूपाणि, शान्तं नो अस्तु कृताकृतम्। शान्तं भूतं च भव्यं च, सर्व मेव शमस्तु नः।२।

पूर्वरूप (आने वाले परिवर्तन के पहले चिन्ह) शान्त हों, किया गया और न किया गया हमारे लिए शान्त हो, हो चुका और होने वाला शान्त हो, सब ही हमारे लिए शान्त हो।

२४—इयं या परमेष्ठिनी, वाग् देवी ब्रह्मसंशिता। ययैव ससृजे घोरं, तयैव शान्तिरस्तु नः।३।

यह वाग् देवी जो वेद से तीव्र हुई सब से ऊंचे पद पर स्थित होती है, जिस से भयावना रूप रचा जाता है, उसी से हमें शान्ति हो।

२५—इदं यत् परमेष्ठिनं, मनो वा ब्रह्मसंशितम् ।
येनैव ससृजे घोरं, तेनैव शान्तिरस्तु नः ।४।

वेद से तीव्र हुआ मन जो सबसे ऊंचे पद पर स्थित होता है, जिससे भयावना रूप रचा जाता है, उसीसे हमें शान्ति हो।

२६—इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि, मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि । यैरेव ससृजे घोरं, तैरेव शान्तिरस्तु नः ।५।

वेद से तीव्र हुए ये पांच इन्द्रिय जिन में मन छटा है जो मेरे हृदय में रहते हैं. जिन से भयावनारूप रचा जाता है, उन्हीं से मुझे शान्ति हो।

२७—द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिःसा मा शान्तिरेधि ।

(यजु० ३६ । १७)

द्यौ शान्तिरूप हो, अन्तरिक्ष शान्तिरूप हो, पृथिवी शान्तिरूप हो, जल शान्तिरूप हों, ओषधियें शान्तिरूप हों, वनस्पतियें शान्तिरूप हों, विश्वेदेव शान्तिरूप हों, वेद शान्ति

रूप हो, सब शान्तिरूप हो, शान्ति ही शान्ति हो, वह शान्ति मुझे प्राप्त हो ।

अभय प्राप्ति ।

२८–यतो यतः समीहसे, ततो नो अभयं कुरु । शं नः कुरु प्रजाभ्यः, अभयं नः पशुभ्यः ।

(यजु० ३६ । २२)

जहां जहां से तू चेष्टा करता है (अपनी महिमा दिखलाता है) वहां वहां से हमें अभय कर । कल्याण कर हमारी प्रजाओं के लिए और अभय पशुओं के लिए ।

२९–यत इन्द्र भयामहे, ततो नो अभयं कृधि । मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिः, वि द्विषो विमृधो जहि ।

(ऋ० ८।६१।१३)

हे इन्द्र जहां से हम डरते हैं वहां से हमें अभय कर । हे धनों के दातः ! हमारे लिए शक्ति को धारण कर और अपनी सहायताओं से हमारे शत्रुओं और संग्रामों को हम से परे हटा दे ।

३०–त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात्पुरः, इन्द्र निपाहि विश्वतः । आरे अस्मत् कृणुहि दैव्यं भयम्, आरे हेतीरदेवीः ।

(ऋ० ८।६१।१६)

हे इन्द्र आगे से पीछे से नीचे से ऊपर से सब ओर से हमारी रक्षा कर । दैव्य भय को हम से परे हटा और मानुष भय को हम से परे हटा ।

३१–अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नः, अभयं सोमः सविता नः कृणोतु । अभयं नोऽस्तूर्वन्तरिक्षं, सप्त ऋषीणां च हविषा अभयं नो अस्तु ।

(अथ० ६ । ४० । १)

अभय यहां हमें द्यौ और पृथिवी हो । अभय हमें सूर्य और चन्द्र हो, विस्तृत अन्तरिक्ष हमें अभय हो । सप्त ऋषियों की हवि से हमें अभय हो ।

३२–अभयं नः करत्यन्तरिक्षम्, अभयं द्यावा पृथिवी उभे इमे । अभयं पश्चादभयं पुरस्ताद्, उत्तरा दधरादभयं नो अस्तु । (अथ० १९।१५।५)

अन्तरिक्ष हमारे लिए अभय हो, ये दोनों द्यौ और पृथिवी अभय हों, अभय पीछे से हो अभय आगे से हो, ऊपर और नीचे से हमें अभय हो ।

३३–अभयं मित्रादभयम मित्राद्, अभयं ज्ञातादभयं पुरो यः । अभयं नक्त मभयं दिवा नः, सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु । (अथ० १९।१५।६)

अभय मित्र से हो, अभय शत्रु से हो, अभय हो जाने हुए से, अभय हो उस से जो सामने है । रात्रि हमारे लिए अभय हो, दिन अभय हो, सारी दिशाएं मेरा मित्र हों ।

३४–दृते दृꣳह मा, मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।

(यजु० ३६ । १८)

हे दृढ़ बनाने वाले मुझे (ऐसा) दृढ़ बना, कि सब लोग मुझे मित्र की दृष्टि से देखें । मैं (स्वयं) सब लोगों को मित्र की दृष्टि से देखता हूं (और चाहता हूं कि) हम सब आपस में एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें ।

३५–दृते दृꣳह मा ज्योक् ते संदृशि जीव्यासम् । ज्योक् ते संदृशि जीव्यासम् ।१९।

हे दृढ़ बनाने वाले मुझे दृढ़ बना, मैं तेरी कृपादृष्टि में दीर्घ काल जीऊं तेरी कृपा दृष्टि में दीर्घ काल जीऊं ।

सप्तमः प्रकाशः ।

ब्रह्मचर्य्य ।

१–आचार्य उपनयमानः, ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भ

मन्तः । तं रात्रिस्तिस्त्र उदरे बिभर्ति, तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः । (अथर्व ११।५।३)

आचार्य जब (शिष्य को) अपने पास (अपनी जम्मेदारी में) लेता है, तब वह उसे अपने अन्दर गर्भ रूप बना लेता है । उस को तीन रातें उदर में धारण करता है । जब वह जन्म लेता है तो उस को देखने के लिए देवता मिल कर उस की ओर जाते हैं* ।

२—इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीया, उतान्तरिक्षं समिधा पृणाति । ब्रह्मचारी समिधा मेखलया, श्रमेण लोकां स्तपसा पिपर्ति ।४।

यह पृथिवी (पहली) समिधा है, दूसरी (समिधा) द्यौ है और (तीसरी) समिधा से वह अन्तरिक्ष को तृप्त करता है । ब्रह्मचारी समिधा से, मेखला से, श्रम से और तप से तीनों लोकों का पालन करता है* ।

---

* आर्य जाति में उपनयन दूसरे जन्म की तय्यारी है । इस में आचार्य ब्रह्मचारी को अपनी सौंपना में लेकर पहले उस को गर्भस्थ बालक का रूप देता है । शिष्य को पहले तीन दिन आचार की शिक्षा देता है । यही उसको मातृवत् अपने उदर में रखना है ।

* ब्रह्मचारी जो तीन समिधाएं प्रति दिन अग्नि में डालता है उन तीन से वह तीन लोकों को तृप्त करता है । मनुष्यों के श्रम और तपश्चर्या के जीवन से तीनों लोकों में सुख शान्ति बढ़ती है ।

३-ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः, कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः । स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं, लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥६॥

ब्रह्मचारी जब समिधा से चमका हुआ, * काला मृगान पहने, † लंबी मूंछों वाला, ‡ दीक्षित के रूप में (घर को वापिस) जाता है, वह शीघ्र पहले समुद्र (ब्रह्मचर्याश्रम) से दूसरे समुद्र (गृहाश्रम) को प्राप्त होता है और लोकों को वश में करके वारवार सुडौल बनाता रहता है § ।

४-ब्रह्मचर्येण तपसा, राजा राष्ट्रं विरक्षति । आचार्यो ब्रह्मचर्येण, ब्रह्मचारिण मिच्छते ।१७।

ब्रह्मचर्य और तप से राजा राष्ट्र की रक्षा करता है, और आचार्य ब्रह्मचर्य से ब्रह्मचारी की इच्छा करता है ।

राज्यतन्त्र को चलाने का अधिकार ऐसे क्षत्रियों के हाथ में होना चाहिये, जिन्होंने तपश्चर्या के साथ ब्रह्मचर्याश्रम को पूरा किया हो, और शिक्षा का अधिकार भी उन्हीं ब्राह्मणों

---

* नित्य प्रति समिधा के होम से ब्रह्मचारी का तेज प्रचण्ड होता है। † काला मृगान सादे रहन सहन का उपलक्षण है । ‡ लंबी मूंछें पूर्ण यौवन का उपलक्षण है । § लोगों को धर्म में बढ़ाता रहता है और तीनों लोकों को सुख शान्तिमय बनाता रहता है ।

के हाथ में देना चाहिये, जिन्होंने तपश्चर्या के साथ ब्रह्मचर्याश्रम को पूरा किया हो । राजा और आचार्य उपलक्षण हैं, वस्तुतः कोई भी महत्कार्य उन पुरुषों को नहीं सौंपना चाहिये, जिन में ब्रह्मचर्य और तपस्या नहीं है ।

५–ब्रह्मचर्येण कन्या, युवानं विन्दते पतिम् । अनड्वान् ब्रह्मचर्येण, अश्वो घासं जिगीषति १८

ब्रह्मचर्य से कन्या युवा पति को पाती है । ब्रह्मचर्य से बैल और घोड़े अपना चारा जीतना चाहते हैं ।

जैसे पुरुषों को ब्रह्मचर्य रख कर पूर्ण युवा होकर ही विवाह करने का अधिकार है, वैसे कन्या को भी ब्रह्मचर्य का पालन करके पूर्ण युवति होकर ही विवाह करने का अधिकार है । ब्रह्मचारी पति वरना उन्हीं को शोभा देता है, जो स्वयं ब्रह्मचारिणी हैं ।

वहुत क्या, पशुओं में भी ब्रह्मचर्य का महत्त्व स्पष्ट है । जो बैल घोड़े ब्रह्मचर्य से रहते हैं, वे दूसरों से प्रवल होने के कारण उनसे अपना आहार जीत लेते हैं । प्रबल सांड और प्रबल घोड़े को आता देख कर दूसरे बैल और घोड़े घास छोड़ अन्यत्र जा चरने लगते हैं । किसान लोग जानते हैं, कि बैल जिस दिन ब्रह्मचर्य को तोड़ दे, तो वह हल को खींच नहीं सकता, बैठ जाता है । अतएव वे बैलों को खस्सी (नपुंसक) कर देते हैं ।

६–पृथक् सर्वे प्राजापत्याः, प्राणानात्मसु

विभ्रति । तान् सर्वान् ब्रह्म रक्षति, ब्रह्मचारिण्या-
भृतम् । २३ ।

प्रजापति के सब पुत्र (देव, मनुष्य और असुर) अलग २ अपने शरीरों में प्राणों को धारण किये हुए हैं । उन सब की वह ब्रह्म (वेद) रक्षा करता है, जो ब्रह्मचारी में फला फूला है (ब्रह्मचर्य व्रत के साथ पढ़ा ही वेद सब की रक्षा में समर्थ है)

७--ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति, तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः । प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं, वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् । २४ ।

ब्रह्मचारी चमकते हुए ब्रह्म (वेद वा परब्रह्म) को धारण करता है । उस में समस्त देवता इकट्ठे रहते हैं । ब्रह्मचारी श्वास प्रश्वास की प्रगति को, काम करने की शक्ति को, मन, वाणी, हृदय, वेद और मेधा को जगत् में प्रकट करता है ।

८, ९--चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेहि अन्नं रेतो लोहितमुदरम् । २५ । तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे, तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे । स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः, पृथिव्यां बहु रोचते ।२६।

(हे ब्रह्मचर्य) हम में दृष्टि, श्रुति, यश, अन्न, बीज

(उत्पादनशक्ति) रुधिर, उदर (पाचन शक्ति) स्थापन कर (जो ब्रह्मचर्य के फल हैं) । २५ । ब्रह्मचारी इन सब वस्तुओं को अपने लिए तय्यार कर लेता है, वह तप तपता हुआ समुद्र में जल की पीठ पर खड़ा हुआ, * वह न्हा कर (स्नातक बन कर) भूरे बालों वाला, लाल रंगत वाला पृथिवी पर बहुत चमकता है ।

१०–पार्थिवा दिव्याः पशवः, आरण्या ग्राम्याश्च ये । अपक्षाः पक्षिणश्च ये, ते जाता ब्रह्मचारिणः २१

पृथिवी और आकाश के-पक्षों से रहित और पक्षों वाले प्राणधारी-वनों और ग्रामों के पशु सब ब्रह्मचारी † बनते हैं ।

पूर्ण युवा होने से पूर्व ब्रह्मचर्य को अटूट रक्खे, यदि कदाचित् स्वप्नदोष से भी ब्रह्मचर्य खण्डित हो तो प्रातः स्नान कर इस मन्त्र को पढ़े—

११–पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन्, पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन्, पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन् । वैश्वानरो अदब्धस्तनूपाः, अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् । (यजु० ४।१५)

---

* अर्थात् पानी में कमलपत्र की नाईं जगत् में रहता हुआ जगत् से ऊंचा रहता हैं और लिप्त नहीं होता है ।

† युवा होने से पूर्व ब्रह्मचर्य को अखण्डित रखते हैं

फिर मन फिर आयु मुझे प्राप्त हो, फिर प्राण फिर आत्मा मुझे प्राप्त हो, फिर नेत्र फिर श्रोत्र मुझे प्राप्त हो, हमारे शरीरों का रखवाला वैश्वानर अग्नि जो कभी धोखे में नहीं आता वह हमें दुःख और पाप से सदा बचाता रहे।

आरोग्य, बल और आयु की वृद्धि।

१२,१३—वाङ्म आसन् नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः। अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥१॥ ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः प्रतिष्ठा। अरिष्टानि मे सर्वात्मा निभृष्टः ॥२॥

(अथर्व १९।६२)

मेरे मुख में वाणी है (मुझ में अपने मन के भाव प्रकट करने की शक्ति है, और मुझे अपने भाव प्रकट करने में किसी का भय नहीं है) मेरे नथनों में प्राण है (मैं जीता जागता हूं, अतएव जीवन के लक्षण दिखला सकता हूं) मेरे नेत्रों में दृष्टि है और कानों में श्रुति है (मैं यथार्थ देखता हूं और यथार्थ सुनता हूं) मेरे बाल श्वेत नहीं हैं, मेरे दांत लाल नहीं हैं, (न उन से रुधिर वहता है न मैले हैं) मेरी भुजाओं में बड़ा बल है ॥१॥ मेरी रानों में शक्ति है, और मेरी जंघों में वेग है, मेरे दोनों पाओं में दृढ़ खड़ा होने की शक्ति है (मैं इस जीवन संग्राम में अपने पाओं पर खड़ा हूं, और उठ कर खड़ा हूं)

मेरे सारे अंग पूर्ण और नीरोग हैं, मेरा आत्मा परिपक्क (बलवान् और तेजस्वी) है।

१४—तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्ने स्यायुर्मे देहि वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण।

(यजु० ३। १७)

हे अग्ने! तू शरीर का रक्षक है, मेरे शरीर की रक्षा कर। हे अग्ने! तू आयु का देने वाला है, मुझे आयु दे। हे अग्ने तू कान्ति का देने वाला है, मुझे कान्ति दे। हे अग्ने जो मेरे शरीर की ऊनता है, वह मेरी पूर्ण कर दे।

१५—तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहो ऽसि सहो मयि धेहि।

(यजु० १९। ९)

तू तेज है, मुझ में तेज स्थापन कर। तू शक्ति है, मुझ में शक्ति स्थापन कर। तू बल है, मुझ में बल स्थापन कर। तू ओज (प्रयत्न शक्ति) है, मुझ में ओज स्थापन कर। तू मन्यु है मुझ में मन्यु स्थापन कर। तू सहनशक्ति है, मुझ में सहन-शक्ति स्थापन कर।

१६—सं वर्चसा पयसा सं तनूभिः, अगन्महि

मनसा सं शिवेन । त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायः, अनुमार्ष्टु तन्वो यद् विलिष्टम् । (यजु० २ । २४)

हम तेज से, शक्ति से, पुत्र पौत्रादि से और कल्याणकारी मन से संगत हों, उत्तम दाता प्रजापति मेरे शरीर की न्यूनता को पूरा करे और ऐश्वर्य की पुष्टि करे।

१७–२४--पश्येम शरदः शतम् ।१। जीवेम शरदः शतम् ।२। बुध्येम शरदः शतम् ।३। रोहेम शरदः शतम् ।४। पुष्येम शरदः शतम् ।५। भवेम शरदः शतम् ।६। भूषेम शरदः शतम् ।७। भूयसीः शरदः शतात् । ८ ।

हम सौ वर्ष देखें ।१। सौ वर्ष जियें ।२। सौ वर्ष समझें ।३ सौ वर्ष उगें (फलें फूलें) ।४। सौ वर्ष पुष्ट हों ।५। सौ वर्ष ऐश्वर्य वाले हों ।६। सौ वर्ष शोभा वाले हों ।७। सौ वर्ष से बढ़ कर भी ।८।

२५--बलं धेहि तनूषु नः, बल मिन्द्रानडुत्सु नः । बलं तोकाय तनयाय जीवसे, त्वं हि बलदा असि।

(ऋ० ३ । ५३ । १८)

हे इन्द्र ! हमारे शरीरों में बल दे, हमारे पशुओं में बल

दे, हमारी सन्तान और सन्तान की सन्तान को दीर्घ जीवन के लिए बल दे, क्योंकि तू बल का दाता है।

वाग्देवी सरस्वती की आराधना ।

२६–पावका नः सरस्वती, वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः । (ऋ० १ । ३ । १०)

सरस्वती हमारे यज्ञ को प्यार करे, जो पवित्र कर देने वाली, अनेक प्रकार के बलों से बल वाली और ज्ञान (धन) से धनवती है।

२७–चोदयित्री सूनृतानां, चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती । ११ ।

सारे प्रिय उदार (वचनों) के प्रेरने वाली, उत्तम विचारों के फुराने वाली, सरस्वती हमारे यज्ञ (कर्म और व्यवहार) को धारण करती है।

२८–महो अर्णः सरस्वती, प्रचेतयति केतुना । धियो विश्वा विराजति । (ऋ० १ । ३ । १२)

सरस्वती अपनी किरण से बड़े समुद्र * का ज्ञान कराती है, और सारी बुद्धियों को चमकाती है।

———

* बड़ा समुद्र–विश्व, विराट्, संसारसागर ।

अष्टमः प्रकाशः ।

स्वयंवर विवाह और माता पिता के आधीन विवाह ।

१–कियती योषा मर्यतो वधूयोः, परिप्रीता पन्यसा वार्येण । भद्रा वधूर्भवति यत् सुपेशाः, स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित् । (ऋ० १०।२७।१२)

(प्रश्न) वधू को चाहते हुए पुरुष के लिए कैसी स्त्री अपने प्रशंसनीय धन (रूप और गुणों) से उस की परम प्रीति का पात्र होती है। (उत्तर) रूपवती गुणवती जो वधू होती है, वह स्वयं बहुतों के मध्य में से अपने वर को चुन लेती है।

२–सोमो वधूयुरभवद्, अश्विनास्तामुभा वरा । सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं, मनसा सविता ददात् । (ऋ० १०।८५।९)

चन्द्र वधू की कामना वाला हुआ, दोनों अश्वि उस के लिए चुनने वाले बने जब कि कामना करती हुई सूर्या को सविता ने मन से दिया * (=देने का मन में संकल्प किया)।

* सूर्या=सूर्य की प्रभा। चन्द्र में जो प्रभा हैं वह सूर्य की है। विवाह का आदर्श दिखलाने के लिए उस को रूपक अलंकार में इस प्रकार वर्णन किया है, कि सूर्या का चन्द्र के घर में प्रवेश मानो चन्द्र और सूर्या का विवाह है। यह विवाह तब होता है जब चन्द्र जो वर हैं उस को वधू की कामना होती है और इधर वधू जो सूर्या है उसे पति की कामना होती है, तब सविता=सूर्य जो सूर्या का पिता है वह उसे देने का संकल्प मन में लाता है।

कन्या को विवाह की अनुज्ञा ।

३–प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्, येन त्वाऽबध्नात् सविता सुशेवः । ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके, अरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि ।

(ऋ० १० । ८५ । २४)

तुझे वरुण के उस बन्धन (अखण्ड ब्रह्मचर्य) से स्वतन्त्र करता हूं जिस के साथ शुभ चाहने वाले सविता ने तुझे बांधा हुआ था । अब यज्ञ के घर और पुण्य के क्षेत्र (गृहाश्रम) में तुझ नीरोग को पति के साथ मिलाता हूं ।

विवाह में पाणिग्रहण ।

विवाह में वर वधू का हाथ पकड़ कर उसे सम्बोधित करता हुआ कहता है—

४–देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु, सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु । अग्निः सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु । (अथर्व १४।१।४९)

सविता देव तेरे हाथ को ग्रहण करे, राजा सोम तुझे उत्तम सन्तान वाला बनाए, जातवेदा अग्नि पति के लिए पत्नी को सौभाग्य वाली और दीर्घ आयु वाली बनाए ।

५–गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं, मया पत्या

जरदष्टिर्यथाऽसः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धि-र्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः। (ऋ० १०।८५।३६)

मैं सौभाग्य के लिए (अपने भविष्यत् को आनन्दमय बनाने के लिए, परस्पर के प्रेमभाव, ऐश्वर्य के उपभोग और उत्तम सन्तान आदि के लिए) तेरा हाथ पकड़ता हूं, जिस से कि तू मुझ पति के साथ लम्बी आयु को भोगे, हम दोनों को गृहपतियों के धर्म पालने के लिए भग अर्यमा सविता और पुरन्धि देवताओं ने तुझे मेरे हाथ सौंपा है।

६—भगस्ते हस्तमग्रहीत्, सविता हस्तमग्रहीत्। पत्नी त्वमसि धर्मणा, अहं गृहपतिस्तव।

(अथर्व १४।१।५१)

ऐश्वर्य वाला हो कर और धर्म कार्यों में प्रेरने की शक्ति वाला बन कर मैंने तेरा हाथ पकड़ा है। तू धर्म से मेरी पत्नी है, और मैं तेरा गृहपति हूं।

७—ममेयमस्तु पोष्या, मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः। मया पत्या प्रजावति, सं जीव शरदः शतम्॥

(अथर्व १४।१।५२)

बृहस्पति (वेद के अधिपति) ने तुझे मेरे सिपुर्द किया है, तेरा पालन पोषण मेरा कर्तव्य हो गया है, (परमात्मा की

कृपा से) मुझ पति के साथ मिल कर उत्तम सन्तानों से युक्त हुई तू सौ वर्ष का उत्तम जीना जी।

८—अहं विष्यामि मयि रूप मस्याः, वेददित् पश्यन् मनसा कुलायम्। न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये, स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान्।

(अथर्व १४। १। ५७)

मैं इस का चित्र अपने हृदय में धारण करता हूं, जिस को मैंने अपने मन का घोंसला (विश्रामस्थान) देख कर प्राप्त किया है। मेरे आनन्द उपभोग इस के साथ होंगे। मैं अब स्वयं वरुण की पाशों को खोल कर उन्मुक्त हुआ हूं, (परमात्मा का जो यह बन्धन है, कि बिना दोनों का शुद्ध प्रेम हुए कोई किसी नारी को गृहिणी न बनाय, तदनुसार इस नारी को मैं शुद्ध प्रेम का पात्र पाकर और इसके शुद्ध प्रेम का पात्र बन कर अपने मन के साथ इस बन्धन से उन्मुक्त हुआ हूं, अर्थात् धर्ममर्यादा के अनुसार इस को पत्नी बनाया है। मैं बराबर धर्म बन्धन के अन्दर स्थिर रहा हूं, उसे तोड़ा नहीं, किन्तु अब उसे खोला है)।

९—येनाग्निरस्या भूम्याः, हस्तं जग्राह दक्षिणम्। तेन गृह्णामि ते हस्तं, मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च। (अथर्व १४। १। ५८)

जिस (महिमा) के साथ अग्नि ने पृथिवी का दक्षिण हस्त ग्रहण किया है *, उस (महिमा) से मैं तेरे हाथ को ग्रहण करता हूं, तूं मेरे साथ मिल कर सन्तान और धन से कभी न विचलित हो।

इन मन्त्रों में विवाह सम्बन्ध में वर को वधू का दक्षिण हस्त पकड़ने की विधि दिखलाते हुए हाथ पकड़ने का अधिकार और भार दोनों दिखला दिये हैं। अधिकारी वह है, जो धर्मबन्धन में ऐसा बन्धा हुआ है, कि उस की दृष्टि में अपनी धर्मपत्नी को छोड़ और सब स्त्रियें मातृवत् भगिनीवत् और पुत्रीवत् रही हैं,और आगे भी रहेंगी। यह बन्धन उस ने केवल अपनी पत्नी के लिए खोला है, जब कि यथाविधि यज्ञ करके, उस का पाणिग्रहण किया है । और ऐसे अद्वितीय प्रेम का उसे पात्र बनाना चाहता है, कि अपने हृदय में उस के रूप का चित्र खींच लेगा, और वह नारी उस के थके मांदे वा घबराए मन के लिए विश्राम का स्थान बनेगी।

---

* पृथिवी का सारा जीवन अग्नि (घर्म, हरारत) से है, जो कि भूमि पर स्थावर जंगम की उत्पत्ति और वृद्धि का निमित्त है, अतएव अग्नि पृथिवी का अधिपति हैं ! 'अग्नि ने पृथिवी का दक्षिण हस्त ग्रहण किया हैं' इस रूपक से यह बोधन किया हैं, कि स्त्री का दक्षिण हस्त ग्रहण करना उसी को शोभा देता है, जो अपनी पत्नी के साथ एकप्राण हो कर उस की शोभा समृद्धि का ऐसा साधक बना रहता हैं, जैसे अग्नि पृथिवी की शोभा और समृद्धि का साधक है ।

हाथ पकड़ने और पकड़ाने का प्रयोजन यह है, कि दोनों गृहपति बन कर एकप्राण हो कर गृहाश्रम में प्रवेश करें। एक दूसरे के प्रेम में रंगे जाकर सौभाग्य सुख को अनुभव करें, ऐश्वर्य को बढ़ाएं, सुसन्तति का सुख अनुभव करें और परस्पर के अनुकूल बर्ताव और मोद प्रमोद से जीवन की लड़ी को लंबे करते हुए पूर्ण आयु का उपभोग करें।

पितृगृह से विदाई वा पतिगृह में जाने की अनुमति

१०–अर्यमणं यजामहे, सुबन्धुं पतिवेदनम् ।
उर्वारुक मिव बन्धनात्, प्रेतो मुञ्चामि नामुतः ।

(अथर्व १४।१।१७)

हम अर्यमा (देव) को पूजते हैं जो उत्तम बन्धु वाला और श्रेष्ठ पति का मिलाने वाला है। डंडी से (पके) खरबूजे की नाईं तुझे इस (कुल) से छुड़ाता हूं, उस से (पति कुल से) नहीं।

११–प्रेतो मुञ्चामि नामुतः, सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्रमीढ्वः, सुपुत्रा सुभगाऽसति (ऋ० १०।८५।२५)

यहां (पितृ कुल) से तुझे उन्मुक्त करता हूं वहां (पति कुल) से नहीं। उधर तो मैंने इसे सुबद्ध (पूरा पाबंद) कर दिया है, जिससे कि हे उदार इन्द्र ! यह उत्तम पुत्रों वाली और सौभाग्य वाली हो।

१२—भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्य, अश्विना त्वा प्रवहतां रथेन । गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथाऽसः, वशिनी त्वं विदथमावदासि ।२०।

भग तुझे हाथ पकड़ कर यहां से ले चले, अश्वि तुझे रथ से ले चलें, अपने घरों को जा, जिस से तू घर की मालिका हो, और अपने को अपने वश में रखती हुई सभाओं में निर्भय बोल ।

१३—प्रबुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना, दीर्घायुत्वाय शतशारदाय । गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथाऽसः, दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु । ७५ ।

सौ वर्ष की दीर्घ आयु के लिए सावधानी के साथ समझती हुई सदा जागती रह । घरों को जा जिस से कि तू घरों की स्वामिनी हो, सविता तेरी आयु को दीर्घ करे ।

पतिगृह में पत्नी का प्रवेश और स्वागत ।

पतिगृह में प्रवेश करने पर होम द्वारा वधू का इन मन्त्रों से स्वागत किया जाता है—

१४—आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिः, आजरसाय समनक्त्वर्यमा । अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमाविश, शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ।

(ऋ० १० । ८५ । ४३)

प्रजापति हमें सन्तान की वृद्धि देवे, अर्यमा हमें बुढ़ापे तक पहुंचने के लिए तेजस्वी बनाय रक्खे। सुमंगली (कल्याण लाने वाली) हो कर इस घर में प्रवेश कर। कल्याण लाने वाली हो हमारे मनुष्यों के लिए और कल्याण लाने वाली हो हमारे पशुओं के लिए।

१५–अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि, शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः। वीरसूर्देवकामा, शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे। ४४।

(हे वधू) तेरी दृष्टि कभी क्रूर न हो, पति के जीवन को सदा बढ़ाने वाली हो, पशुओं के लिए कल्याणकारिणी हो, विशालहृदय वाली हो, तेज और कान्ति से पूर्ण हो, वीर-जननी बन, परमेश्वर की भक्त बन, सुखदायिनी हो, कल्याण लाने वाली हो हमारे मनुष्यों के लिए और कल्याण लाने वाली हो हमारे पशुओं के लिए।

१६–इमां त्वमिन्द्रमीढ्वः, सुपुत्रां सुभगां कृणु। दशास्यां पुत्रानाधेहि, पतिमेकादशं कृधि।४५।

हे उदारदाता इन्द्र तू इस नारी को सौभाग्यवती और सुपुत्रवती बना, इस में से दस पुत्र दे और ग्यारहवां पति बना (पुत्रों वाली हो और सुहाग बना रहे)।

१७–सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधिदेवृषु ।४६।

(हे वधू) महारानी हो ससुर के पास, महारानी हो सास के पास, महारानी हो ननद के पास और महारानी हो देवरों के पास ।

१८–सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां, सुशेवा पत्ये श्वशुराय शम्भूः । स्योना श्वश्र्वै प्रगृहान् विशे-मान् । (अथर्व १२।२।२६)

सुमङ्गली, घरों को वृद्धि देने वाली, पति के लिए शुभदा श्वशुर के लिए कल्याणदा और सास के लिए शान्तिमयी हो कर इन घरों में प्रवेश कर ।

१९–स्योना भव श्वशुरेभ्यः, स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे, स्योना पुष्टायैषां भव ॥

(अथर्व १० । २ । २७)

सास ससुर आदि सब बड़ों के लिए सुख देने वाली हो, पति के लिए सुख देने वाली हो, घर के सब लोगों के लिए सुख देने वाली हो, इन सब मनुष्यों के लिए सुख देने वाली बन कर इन सब की पुष्टि के लिए तत्पर रह ।

यह सुमङ्गली वधू है, मिल कर इसे देखो, इसे सौभाग्य देकर पीछे अपने घरों को जाओ।

**२३–ये पितरो वधू दर्शाः, इयं वहतुमागमन्।
ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै, प्रजावच्छर्म संयच्छन्तु।**

(अथर्व १४। २। ७३)

वधू के देखने वाले जो पितर इस (वर) को विवाहने आए हैं, वे इस वधू को उस के पति समेत संतान से वृद्धि और सुख शान्ति (का आशीर्वाद) देवें।

**२४–इहैव स्तं मा वियौष्टं, विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिः, मोदमानौ स्वे गृहे।**

(ऋ० १०।८५।४२)

यहां ही रहो (सदा इकट्ठे मिले रहो) मत वियुक्त होवो, अपने घर में पुत्र पोतों के साथ खेलते हुए आनन्द मनाते हुए पूर्ण आयु भोगो (इस से गृहाश्रम जीवन का यह रहस्य भी दिखला दिया है, कि ऐसे योग्य जोड़े को ही गृहाश्रम का भार उठाना चाहिये, जो गृहाश्रम में अपने और अपने परिवार के जीवन को क्रीड़ावत् आनन्दमय बनाए रख सके)।

**२५–इहेमाविन्द्र संनुद, चक्रवाकेव दम्पती।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ, विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।**

(अथर्व १४। २। ६४)

हे इन्द्र इस दम्पती को चकवी चकवे की नाईं (प्रेम के) पूरे रंग में रंग दे, सन्तति समेत यह जोड़ा उत्तम घरों में रहे और पूर्ण आयु को भोगे।

२६—स्योनाद्द योनेरधिबुध्यमानौ, हसामुदौ सहसा मोदमानौ। सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथः, जीवावुषसो विभातीः। (अथर्व १४।२।४३)

तुम दोनों सो कर सदा सुखमय घर से उठो, तुम्हारे चेहरे खिले रहें, मोद प्रमोद से भरे रहो, तुम्हारे पास उत्तम घर और उत्तम पशु हों, तुम्हारे घर में शूरबीर यशस्वी तेजस्वी पुत्र हों और तुम उच्च जीवन दिखलाते हुए चमकती हुई उषाओं को पार करते रहो (दीर्घ आयु भोगो)।

नवमः प्रकाशः (गृहाश्रम)

हमारे घर कैसे हों ?

१—ता वां वास्तून्युश्मासि गमध्यै, यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः। अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः, परमं पद मवभाति भूरि। (ऋ० १।१५४।६)

(हे दम्पती !) तुम दोनों के जाने के लिए हम वे घर चाहते हैं, जहां सब से आश्रय लेने योग्य (स्वास्थ्यप्रद)

रश्मियें आती जाती रहें, यहां ही सब से स्तुति के योग्य सब के दाता विष्णु की सब से ऊंची महिमा बलवत् प्रकाशती है (जिन घरों में सूर्य का प्रकाश खुला आता है, उन में स्वास्थ्य उत्तम रहने के हेतु बल बुद्धि आयु और प्रजा की वृद्धि होने से परमात्मा की महिमा प्रकाशती है, और वहां ही हृदयों में परमात्मा प्रकाशते हैं, यह ध्वनि से बोधित किया है। यहां जो यह उपदेश दिया है, कि घरों में प्रकाश खुला आता जाता रहे, इस से यह सिद्ध होता है, कि एक तो घर एक दूसरे से मिले हुए नहीं होने चाहियें, किन्तु एक दूसरे से अलग २ और चारों ओर से खुले होने चाहियें, दूसरा यह, कि घर के मध्य में खुला स्थान होना चाहिये, जिस में धूप आ सके, और चारों ओर हर एक आगार (कमरे) में वहां से भी प्रकाश जा सके। ऐसे घर ही स्वास्थ्यप्रद होते हैं। आज कल नगरों में जो घर हैं, वे इसे से विपरीत हैं, अतएव आज कल के स्वास्थ्य अच्छे नहीं रहे, रोगों की वृद्धि हो गई है और आयु घट गई है।

हमारे घरों की शोभा और सम्पदा क्या हो?

२–इहैव ध्रुवां निमिनोमि शालां, क्षेमे तिष्ठाति घृतमुक्षमाणा। तां त्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उपसंचरेम। (अथर्व० १०।१२।१)

यहां पर मैं एक स्थायी शाला की नीव डालता हूं, जो

घृत को सींचती हुई सदा सुरक्षित खड़ी रहे । हे शाले ! तेरे अन्दर हम अपने उन समस्त वीरों समेत आनन्द से विचरते रहें, जो सदा धर्म पर चलते रहें और रोगों से बचे रहें।

'घी को सींचती हुई' घी को पानी की तरह छिड़कती हुई अर्थात् जिस में घी खुलेदिल पानी की तरह बर्ता जाय । 'आयुर्वै घृतम्' घी मनुष्य की आयु है।

२–इहैव ध्रुवा प्रतितिष्ठ शाले, अश्वावती गोमती सूनृतावती । ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वती, उच्छ्रयस्व महते सौभगाय । २ ।

हे शाले यहीं दृढ़ हो कर अपनी नीव जमा, और गौओं से घोड़ों से मीठी बाणियों से तथा अन्न दूध और घी से मालामाल हुई तू बड़े सौभाग्य के लिए ऊंची हो।

४–धरुण्यसि शाले बृहच्छन्दाः पूतिधान्या । आ त्वा वत्सो गमदा कुमार आ धेनवः सायमास्यन्दमानाः । ३ ।

हे शाले तू एक बिशाल छत वाला भंडार है, तू शुद्ध (धर्म से कमाये) और बलबुद्धिवर्धक अनाज से भरपूर बनी रहे। सायं समय बछड़े धेनुएं और छोटे २ बच्चे तेरी ओर उमड़े हुए चले आवें।

५—ऋतेन स्थूणामधिरोह वंश, उग्रो विराजन्नपवृङ्क्ष्व शत्रून् । मा ते रिषन्नुपसत्तारो गृहाणां, शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः ।६

(झंडे का खड़ा करना—) सचाई के साथ हे वंश (झंडे) इस डंडे के ऊपर चढ़, तेजस्वी बन कर चारों ओर दूर दूर तक चमकता हुआ शत्रुओं को परे हटा। तेरे घरों के अन्दर बैठने वाले कभी हानि न उठाएं, हे शाले हम सारे वीरों (वीर पुत्रों) वाले हुए सौ वर्ष जियें। (इस मन्त्र से झंडा खड़ा करे)।

६—एमां कुमारस्तरुण आवत्सो जगता सह। एमां परिस्रुतः कुम्भः आदध्नः कलशैरगुः ।७

इस शाला की ओर कुमार और तरुण, बछड़ों सहित पशु, रस से पूर्ण घड़े और दही के कलश आवें।

७—पूर्णं नारि प्रभर कुम्भमेतं, घृतस्य धारामम्रतेन संभृताम् । इमान् पातॄनमृतेनासमङ्ग्धि, इष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम् ।८।

हे नारि (नए बने घर की स्वामिनि) इस पूर्ण कुम्भ को ला, जो अमृत से पूर्ण की हुई घृत की धारा है। इन पीने वालों को अमृत से युक्त कर, इस शाला की इष्ट (यज्ञ) और पूर्त (दान) रक्षा करें। (इस मन्त्र से नारी जल का कलश लावे)

८--इमा आपः प्रभरामि, अयक्ष्मा यक्ष्मनाशिनीः। गृहानुपप्रसीदामि, अमृतेन सहाग्निना।९

इन जलों को मैं लाया हूं जो रोग से रहित हैं और रोगों के नाशक हैं, अमृत अग्नि के साथ मैं इन घरों में प्रवेश करता हूं। (इस मन्त्र से गृह पति घर में जल छिड़के)

ऐसे घर में प्रवेश करके ब्रह्माण्डपति परमेश्वर को अपने घर का अधिष्ठाता मान कर उस के साथ ऐसा गाढ़ सम्बन्ध जोड़ना चाहिये, कि वह हमें घर में अपना पिता वा अपना सखा प्रतीत होने लगे, और हम अपना योगक्षेम इस दावे के साथ उस से मांगें, जैसे पुत्र पिता से और सखा सखा से मांगता है। जैसा कि कहा है—

९—वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्, स्वावेशो अनमीवो भवा नः। यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व, शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे (ऋ० ७।५४।१)

हे वास्तोष्पते! (हे हमारे घर के स्वामी) हमें स्वीकार करो (अपना बनाओ) (इस घर में) हमारा निवास हमारे लिए शुभ हो। हमें सदा रोगों से बचाए रक्खो, जो कुछ हम आप से मांगें, वह हमें प्रीति से दो, हमारे मनुष्यों और पशुओं पर सदा दयालु रहो।

१०-वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि, गयस्फानो

गोभिरश्वेभिरिन्दो । अजरासस्ते सख्ये स्याम, पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व । २ ।

हे वास्तोष्पते ! हमें वृद्धि दो, हे ऐश्वर्य के अधिपति ! गौओं और घोड़ों से हमारे बल बढ़ाओ, हम तुम्हारी मैत्री में कभी बूढ़े न हों (तुम्हारे साथ हमारी मैत्री कभी पुरानी न हो, सदा नयी बनी रहे) पिता बन कर हम पुत्रों से प्यार करो ।

११—वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते, सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या। पाहि क्षेम उत योगे वरं नः, यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः । ३ ।

हे वास्तोष्पते ! तुम्हारी संगति—जो कल्याणमयी, सुहावनी और सीधे मार्ग पर चलाने वाली है—उस से हम संगत रहें । हम जब उद्योग कर रहे हों, वा विश्राम कर रहे हों सदा हमारी रक्षा करो । हे देवताओ ! सब प्रकार के कल्याणों (बरकतों) से सदा हमारी रक्षा करो ।

इस प्रकार परमात्मा को अपने घर में घर के रक्षक, अपने पिता, और अपने सखा के रूप में सदा अंगसंग अनुभव करो और उस की सहायता से अपने घर को सुख का धाम बनाओ ।

धनार्जन (कमाई)

१२–विश्वो देवस्य नेतुः, मर्तो वुरीत सख्यम् । विश्वो राय इषुध्यति. द्युम्नं वृणीत पुष्यसे । (य० ४।८)

हर एक को चाहिये कि नेता (मार्ग दिखलाने वाले) देव की मित्रता प्राप्त करे, तब धन ऐश्वर्य के लिए धनुष धारण करे (शूरवीर बन कर अपने भुजबल से कमाए, न कि दूसरों की कमाई खाए) और धन को अपनी पुष्टि के लिए स्वीकार करे ।

१३–अग्निना रयिमश्नवत्, पोषमेव दिवे दिवे । यशसं वीरवत्तमम् । (ऋ० १।१।२)

मनुष्य अग्नि के द्वारा (वा साथ) ऐसे ऐश्वर्य को प्राप्त करे, जो दिन दिन पुष्टि देने वाला हो, यश वाला हो और सब से बढ़ कर वीरों वाला हो * ।

१४–अस्मान्त्सु तत्र चोदय, इन्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न यशस्वतः । (ऋ० १।९।६)

हे प्रभूत धन वाले इन्द्र ! हम जो उद्योगी और यशस्वी

---

* ऐसा ऐश्वर्य जो दिन प्रतिदिन पुष्टि ही दे, प्रमाद में कभी न डाले तुम्हें यशस्वी और तेजस्वी बनाए और तुम्हारे पुत्र पौत्रों और भृत्य वर्ग को ऐसा वीर बनाए जिन की बराबरी दूसरे न कर सकें ।

हैं, उन को धन ऐश्वर्य के लिये यथोचित कर्म में आगे बढ़ा* ।

धन हमारे किस काम आए और हमारे अन्दर कितना बल उत्पन्न करे—

१५—एन्द्र सानसिं रयिं, सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर । (ऋ० १।८।१)

१६—नि येन मुष्टिहत्यया, नि वृत्रा रुणधामहै । त्वोतासो न्यर्वता । २ ।

हे इन्द्र हमारी रक्षा के लिए धन लाओ (दो) जिस को हम बांट कर भोगें, जिस से जगत् में सदा हमारा बोल बाला रहे, जिस से हम सदा उत्साह और साहस से भरे रहें और जो धन पीढ़ी पर पीढ़ी टिका रहे (हमारी सन्तान में भी उसकी रक्षा करने और बढ़ाने की शक्ति टिकी रहे) ॥१॥ जिस से हम (इतने बलवान् हों कि) मुक्के मार मार कर शत्रुओं को निकाल दें, और घोड़ों पर सवार होकर निकाल दें (हमारा धन छीनना चाहने वाले हमारे मुक्कों के सामने भी न ठहर सकें, और घोड़ों पर सवार हो कर तो हम दलों के मुंह मोड़ दें) ।

---

* धन वही श्लाघनीय है जो उद्योगी बन कर स्वयं अपने भुजबल से कमाया है और यश के साथ कमाया हैं न कि गुह्य (रिश्वत) अत्याचार, छल कपट, चाटूक्ति (खुशामद) आदि अपयश वाले कर्मों से ।

गौएं घोड़े आदि पशु गृहस्थ की उत्तम सम्पत्ति में है ।

१७–यूयं गावो मेदयथा कृशांचिद्, अश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम् । भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचः, बृहद् वो वय उच्यते सभासु ।

(ऋ० ६ । २८ । ६)

हे गौओ ! तुम दुर्बल को भी पुष्ट बना देती हो, शोभाहीन को भी सुन्दररूप वाला बना देती हो, हे भली वाणी वालियो ! तुम घर को भला बना देती हो, सभाओं में तुम्हारी बहुत बड़ी शक्ति कही जाती है ।

१८–प्रजावतीः सूयवसं रिशन्तीः, शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः । मा वः स्तेन ईशत माऽघशंसः, परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ।७।

बछड़ों से युक्त होवो, उत्तम चारा खाओ, स्वच्छ जलाशयों में शुद्ध निर्मल जल पियो, मत कोई चोर और मत बुराई चाहने वाला तुम्हारे ऊपर किसी प्रकार की शक्ति प्राप्त करे, रुद्र का वज्र (रोग) तुम्हें छोड़ दे ।

१९–एह यन्तु पशवो ये परेयुः, वायुर्येषां सहचारं जुजोष । त्वष्टा येषां रूपधेयानि वेद, अस्मिन् तान् गोष्ठे सविता नियच्छतु ।

(अथर्व २ । २६ । १)

पशु यहां घर में आएं जो (दिन भर) घूमें हैं, वायु ने जिनका सहचार सेवन किया है, त्वष्टा जिनके रूपों को पहचानता है, उन पशुओं को सविता इस गोष्ठ में स्थिर रक्खे ।

२०—सं सं स्रवन्तु पशवः, समश्वाः समु पूरुषाः । सं धान्यस्य या स्फातिः, सं स्राव्येण हविषा जुहोमि ।२।

(इस गृह में) बहुत सी गौएं बहुत से घोड़े और बहुत से पुरुष मिल कर आवें, अनाज की बहुतायत इस में हो, (औषधियों और घी के) मेल से बने हवि से मैं होम करता रहूं।

२१—सं सिञ्चामि गवां क्षीरं, समाज्येन बलं रसम् । संसिक्ता अस्माकं वीराः, ध्रुवा गावो मयि गोपतौ । ४ ।

मैं गौओं के दूध को मिलाता हूं, घी के साथ बल और रस को मिलाता हूं, हमारे वीर (दूध घी से) पूर्ण हों, गौएं मुझ गोपति के पास सदा रहें।

२२—आहरामि गवां क्षीरम्, आहार्षं धान्यं रसम् । आहृता अस्माकं वीराः, आ पत्नीरिदमस्तकम् । ५ ।

मैं (यहां) गौओं के दूध को लाता हूं, अनाज और रस को लाता हूं, हमारे वीर यहां लाए गए हैं, पत्नियें इस घर में लाई गई हैं।

गृहस्थ का आहार पुष्टिकारक आरोग्यकारक और बलबुद्धि वर्धक हो—

२३—स्वादो पितो मधो पितो, वयं त्वा ववृमहे। अस्माकमविता भव। (ऋ० १।१८७।२)

हे स्वादु आहार! हे मधुरूप (शहद की नाईं सारभूत) आहार! हम तुझे स्वीकार करते हैं, तू हमारा रक्षक हो।

२४—उप नः पितवाचर, शिवः शिवाभि रूतिभिः। मयोभुरद्विषेण्यः, सखा सुशेवो अद्वयाः। ३।

हे आहार तू कल्याणकारी हो कर कल्याणकारिणी रक्षाओं से हमारी ओर आ। और सुखदायी प्यारे मित्र की नाईं स्वास्थ्य के देने वाला और कष्ट के न देने वाला हो।

२५—तव त्ये पितो रसाः, रजांस्यनुविष्ठिताः। दिवि वाता इव श्रिताः। ४।

वे तेरे रस हे आहार सारे प्रदेशों में फैले हुए हैं, जैसे आकाश में वायु फैले हुए हैं।

२६–तव त्ये पितो ददत, तव स्वादिष्ठ ते पितो। प्रस्वाद्मानो रसानां, तुविग्रीवा इवेरते।५।

हे अन्न तुझ देने वाले के वे रस हैं, हे स्वादिष्ठ अन्न वे तेरे हैं। तेरे रसों के स्वाद लेने वाले मोटी ग्रीवा वालों की नाईं फिरते हैं।

२७–त्वे पितो महानां, देवानां मनो हितम्। अकारि चारु केतुना, तवाहिमवसावधीत्।६।

तेरे अन्दर हे आहार महिमा वाले देवों का मन स्थित है, तेरे झंडे के साथ सुन्दर कर्म किये जाते हैं, तेरी सहायता से वह सर्प (=अन्दर के विष) को मारता है।

२८–यददो पितो अजगन्, विवस्व पर्वतानाम्। अत्राचिन्नो मधो पितो, अरं भक्षाय गम्याः।७।

यदि तू पर्वतों की चोटियों पर चला गया है, वहां से भी हे मधुमय आहार हमारे खाने के लिए तय्यार हुआ आ।

खाने का अन्न आरोग्यप्रद और बल बुद्धि वर्धक होना चाहिये–

२९–अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि, अनमीवस्य शुष्मिणः। प्रप्रदातारं तारिषः, ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे। (यजु० ११।८३)

हे अन्न के स्वामिन् ! हमें अन्न दो जो आरोग्यप्रद और बलकारक हो, देने वाले को सदा वृद्धि दे, हमारे मनुष्य और पशुओं में पराक्रम दे।

३०–यदश्नासि यत्पिबसि, धान्यं कृष्याः पयः। यदाद्यं यदनाद्यं, सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि। (अथर्व ८। २। १९)

जो तू खाता है जो पीता है, और अनाज जो खेती का दूध (सार) है, जो खाने योग्य है और जो उस से भिन्न है (पीने, चाटने, सूंघने योग्य है) तेरे उस सारे अन्न को विष रहित बनाता हूं।

दशमः प्रकाशः।

सन्तान का उत्पादन, पोषण और शिक्षण।

सन्तान का उत्पादन काल—

१–सं पितरावृत्विये सृजेथां, माता च पिता च रेतसो भवाथः। मर्य इव योषामधि रोहयैनां, प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम्।

(अथर्व १४। २। ३७)

(हे बनने वाले) मातापितरौ तुम दोनों ऋतुकाल में आपस में मिलो। तुम दोनों बीज के माता पिता बनो (अमोघ

वीर्य वनो) । हे युवा पुरुष ! एक नर की तरह तू इस युवति से सम्बद्ध हो, तुम दोनों मिल कर सन्तान को उत्पन्न करो और इस लोक में ऐश्वर्य को पुष्ट करो।

२—देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः, समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः । सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा, प्रजावती पत्या सम्भवेह । (अथर्व १४ । २।३२)

आदि में देवता पत्नियों की ओर झुके, उन्हों ने अपने शरीरों को शरीरों के साथ मिला दिया । (उसी नियम का पालन करती हुई) हे नारि तू सारे रूपों वाली सूर्या (सूर्यप्रभा) की नाईं महिमा के साथ प्रजा वाली बनने के लिए इस पति के साथ यहां एक होजा ।

३—इह प्रियं प्रजया ते समृध्यताम्, अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि । एना पत्या तन्वं संसृजस्व, अधा जिव्री विदथमावदाथः ।

(ऋ० १० । ८५ । २७)

(स्त्री को उपदेश) यहां (इस कुल में) तेरे लिए और तेरी सन्तान के लिए प्रिय (खुशियां) बढ़ती रहें । इस घर में घर की स्वामिनी हो कर काम करने के लिए सदा सावधान रह । इस पति के साथ अपने को एक कर दे, और तब तुम दोनों मिल कर बुढ़ापे तक इस घर पर शासन करो ।

आर्य जीवन यह है, कि विवाह बन्धन से सुबद्ध हुए पति पत्नी दोनों आपस में ऐसे अभिन्नहृदय हों, मानों दोनों एक हैं । इसी लिए पत्नी अर्धाङ्गिनी कहलाती है । अतएव दोनों का घर पर समान अधिकार होता है । आर्यधर्म में पत्नी पुरुष की दासी नहीं, किन्तु अर्धाङ्गिनी है, घर की स्वामिनी है । इसी लिए तो पति पत्नी को दम्पती कहते हैं । दम् वेद में घर का नाम है । दम्पती=दम्-पती=घर के दो स्वामी जैसे पति स्वामी है वैसे पत्नी स्वामिनी है । इसी लिए विवाह के अनन्तर वधू के प्रयाण के समय जो मन्त्र पढ़ा जाता है उस में आता है—' गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथाऽसः (ऋ० १० । ८५ । २६) (पति के) घरों की ओर चल, जिस से तू घर की स्वामिनी बने ।

४—आरोह चर्मोपसीदाग्निम्, एष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा । इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै, स ज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस्त एषः । (अथर्व १४।२।२४)

इस मृगान पर आरूढ हो अग्नि के निकट बैठ, वह देव सारे राक्षसों (रोग के बीजों) का नाश करता है, यहां इस पति के लिए सन्तान उत्पन्न कर यह तेरा पुत्र महिमा वाला होगा ।

५—आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन्, तस्यां

नरो वपत बीजमस्याम् । सा वः प्रजां जनयद्-वक्षणाभ्यः, बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः ।

(अथर्व १४ । २ । १४)

(पुरुष को उपदेश) यह नारी उच्च भावों से युक्त हुई उर्वरा भूमि (फलने फूलने वाले क्षेत्र) के रूप में तेरे निकट आई है, हे नर इस में बीज बो । यह उस दोहे हुए सार को जो तुझ शक्तिमान् का बीज है धारण करती हुई अपनी कुक्षि से तुम्हारे लिए सन्तान को उत्पन्न करेगी ।

६—अमो ऽहमस्मि सा त्वं, सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् । ताविह संभवाव प्रजामाजनयावहै । (अथर्व १४ । २ । ७१)

(पति पत्नी से) मैं प्राण हूं तू शक्ति है । मैं साम हूं तू ऋचा है, मैं द्यौ हूं तू पृथिवी है । वे हम दोनों यहां इकट्ठे हों और सन्तान को जन्म देवें ।

७—जनियन्ति नावग्रवः, पुत्रियन्ति सुदानवः । अरिष्टासू सचेवहि, बृहते वाजसातये ।७२

अविवाहित जन पत्नियों की कामना करते हैं और उदार हृदय हो कर पुत्रों की कामना करते हैं । हम दोनों स्वस्थ

जीवन वाले हुए बड़े २ कार्यों के लिए और शक्ति के जीतने के लिए साथी हों।

हर एक गृहस्थ अपनी सन्तान को शरीर की बनावट में सुडौल, सर्वांग पूर्ण, आशिष्ठ, द्रढिष्ठ, बलिष्ठ, ज्ञान विज्ञान और धर्म से सम्पन्न देखना चाहता है। उस की इस कामना की पूर्ति गर्भाधान और पोषण के नियमों के पालने से होती है वे नियम ये हैं-

८—अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं, तपसो जातं तपसो विभूतम् । इह प्रजामिह रयिं रराणः, प्रजायस्व प्रजया पुत्रकाम ।

(१०।१८३।१)

(पत्नी-) मैंने आप को अपने मन में (प्रजा का) ध्यान धरे हुए देख लिया है जिसने कि तप से एक नया जीवन और नई शक्ति पा ली हुई है *। हे पुत्र की कामना वाले ! इस लोक में (मेरे लिए) सन्तान और ऐश्वर्य को देते हुए आप सन्तान से बढ़ें।

९—अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां, स्वायां

* ब्रह्मचर्य धारण कर नया जीवन और नई शक्ति के साथ गृहाश्रम में प्रवेश करे और सन्तानोत्पादन के कर्म से कई दिन पूर्व तय्यारी करके अपने अन्दर नया जीवन और नई सक्ति धारण करे।

तनू ऋत्व्ये नाधमानाम् । उपमा मुच्चा युवति-र्भूयाः, प्रजायस्व प्रजया पुत्रकामे । २ ।

(पति-) मैंने तुझे मन में (प्रजा का) ध्यान धरे हुए और ऋतु पर अपने शरीर में फल चाहती हुई को देख लिया है । हे पुत्र की कामना वाली मेरे समीप तू उच्च भावों वाली युवति बनी रहे और सन्तान से बढ़े ।

ऐसे पुरुष स्त्रियों के लिए प्रजापति का आशीर्वाद—

१०–अहं गर्भमदधामोषधीषु, अहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः । अहं प्रजा अजनयं पृथिव्याम्, अहं जनिभ्यो अपरीषु पुत्रान् । ३ ।

मैंने सारी ओषधियों के अन्दर, समस्त प्राणधारियों के अन्दर सन्तान द्वारा बढ़ने का बीज रक्खा है, मैंने इस पृथिवी पर प्रजाएं उत्पन्न की हैं, और मैं इस से आगे पत्नी बनने वालियों के लिए पुत्र दूंगा ।

गर्भाधान के समय की होम द्वारा भावना

११–यथेयं पृथिवी मही, भूतानां गर्भमादधे । एवा ते ध्रियतां गर्भः, अनु सूतुं सवितवे ।

(अथर्व ६ । २७ । १)

जैसे यह महिमा वाली पृथिवी सब भूतों के गर्भ

(शरीरों के बीज) को अपने में धारण किये हुए है, * इस प्रकार पुत्र की उत्पत्ति के लिए तुझ में गर्भ स्थित हो ।

१२–यथेयं पृथिवी मही, दाधारेमान् वनस्पतीन् । एवा ते ध्रियतां गर्भः, अनुसूतुं सवितवे । २ ।

जैसे यह महिमा वाली पृथिवी इन वनस्पतियों को धारण किये है, इस प्रकार पुत्रोत्पत्ति के लिए तुझ में गर्भ स्थित हो ।

१३–यथेयं पृथिवी मही, दाधार पर्वतान् गिरीन् । एवा ते ध्रियतां गर्भः, अनुसूतुं सवितवे । ३ ।

जैसे यह महिमा वाली पृथिवी पर्वतों और पहाड़ियों को धारण किये हुए है, इस प्रकार ... ।

१४–यथेयं पृथिवी मही, दाधार विष्ठितं जगत् । एवा ते ध्रियतां गर्भः, अनुसूतुं सवितवे ।४।

जैसे यह महिमा वाली पृथिवी स्थावर और जंगम को धारण किये हुए है, इस प्रकार ... ।

---

* पृथिवी सब भूतों की जननी और द्यौ सब भूतों का पिता हैं ।

१५—यथेयं पृथिवी मही, भूतानां गर्भ मादधे ।
एवा दधामि ते गर्भं, तस्मै त्वा तवसे हुवे ।

(अथर्व ५ । २५ । २)

जैसे यह महिमा वाली पृथिवी भूतों के गर्भ को धारण किये हुए है, इस प्रकार तेरे गर्भ को धारण करता हूं और उस (गर्भ) की रक्षा के लिए तुझे बुलाता हूं ।

१६—गर्भो अस्योषधीनां, गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्य, सो अग्ने गर्भमेह धाः ।७।

हे अग्ने (बीज को अंकुरित करने और बढ़ाने वाले तेज) तू ओषधियों का गर्भ है, तू वनस्पतियों का गर्भ है, तू सब भूतों का गर्भ है, सो तू इस में गर्भ को स्थापन कर ।

१७—धातः श्रेष्ठन रूपेण, अस्या नार्याः गवी-न्योः । पुमांसं पुत्र माधेहि, दशमे मासि सूतवे ।१०

हे धातः ! दसवें महीने उत्पन्न होने के लिए इस नारी की गर्भनाड़ियों में श्रेष्ठ रूप से पुरुष पुत्र को स्थापन कर ।

यदि गर्भ न रहता हो तो औषध चिकित्सा के अनन्तर गर्भाधान से पूर्व इन मन्त्रों से हवन करे और गर्भ स्थिति की भावना करे—

अथवा गर्भपात हुआ हो, तो पात के कारण की निवृत्ति कर के गर्भाधान से पहले यही भावना करे—

१८—येन वेहद् बभूविथ, नाशयामसि तत् त्वत्। इदं तदन्यत्र त्वत्, अप दूरे विदध्मसि।

(अथर्व ३। २३। १)

जिस कारण से तू गर्भ न धारने वाली वा गर्भपातिनी हुई है, उसको तुझ से नाश करते हैं, यह कारण तुझसे अन्यत्र चला जावे, उस को तुझ से अलग करके दूर दबाते हैं।

१९—आ ते योनिं गर्भ एतु, पुमान् बाण इवेषुधिम्। आ वीरोऽत्र जायतां, पुत्रस्ते दशमास्यः। २।

भत्थे (तरकश) में बाण की नाईं, नर गर्भ तेरे गर्भाशय में आवे, और इस घर में दस महीने का एक वीर पुत्र जन्म लेवे।

२०—पुमांसं पुत्रं जनय, तं पुमाननु जायताम्। भवासि पुत्राणां माता, जातानां जनयाश्च यान्। ३

नर पुत्र को उत्पन्न कर, उसके पीछे और नर (सन्तान) उत्पन्न हो, तू उन पुत्रों की माता हो जिन को जना है और जिन को आगे जनेगी।

२१–यानि भद्राणि बीजानि, ऋषभा जनयन्ति च। तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व, सा प्रसूर्धेनुका भव। ४।

जिन भद्र बीजों को ऋषभ उत्पन्न करते हैं* उनसे तू पुत्र को लाभ कर तू धेनुरूपी माता हो।

२२–कृणोमि ते प्राजापत्यम्, आ योनिं गर्भ एतु ते। विन्दस्व त्वं पुत्रं नारि, यस्तुभ्यं शमसच्छमु तस्मै त्वं भव। ५।

तेरा प्राजापत्य कर्म करता हूं, गर्भ तेरे गर्भाशय में प्रवेश करे, हे नारि तू पुत्र को पा, जो तेरे लिए शान्तिरूप हो और जिस के लिए तू शान्तिरूप हो।

२३–यासां द्यौः पिता पृथिवी माता, समुद्रो मूलं वीरुधाम्। तास्त्वा पुत्रविद्याय, दैवीः प्रावन्त्वोषधयः। ६।

वे दिव्य ओषधियें पुत्र लाभ के लिए तेरी रक्षा करें जिन का पिता द्यौ है माता पृथिवी है और (वायु का) समुद्र मूल है।

---

* भद्र बीजों–शरीर के बनाने वाले उत्तम बीज। ऋषभ=साण्ड, तत्सदृश बल वीर्य से सम्पन्न पुरुष।

जातकर्म वा प्रसवकाल की हवन द्वारा शुभ भावना—

२४—यथा वातः पुष्करिणीं, समिङ्गयति सर्वतः ।
एवा ते गर्भ एजतु, निरैतु दशमास्यः ।

(ऋ० ५ । ७८ । ७)

जैसे वायु सब ओर से कमलों के समूह को हिलाता है इस प्रकार तेरा गर्भ हिले और दस महीने का हुआ बाहर आवे।

२५—यथा वातो यथा वनं, यथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य, सहावेहि जरायुणा । ८ ।

जैसे वायु जैसे वन और जैसे समुद्र हिलता है, इस प्रकार हे दस मास के (गर्भ) जेर के साथ बाहर आ ।

२६—दशमासाञ्छशयानः, कुमारो अधिमातरि । निरैतु जीवो अक्षतः, जीवो जीवन्त्या अधि । ९ ।

माता की कुक्षि में दस मास सोया यह कुमार जीता हुआ अक्षत हुआ बाहर आवे, जीता हुआ जीती हुई से ।

२७—एजतु दशमास्यः, गर्भः जरायुणा सह । यथाऽयं वायुरेजति, यथा समुद्र एजति । एवाऽयं दशमास्यः, अस्रज्जरायुणा सह ।१०।

इस मास का गर्भ जेर के साथ हिले । जैसे यह वायु हिलता है जैसे समुद्र हिलता है, इस प्रकार यह इस मास का गर्भ जेर के साथ फिसले ।

आदर्श सन्तान क्या है, जो हर एक माता पिता की मानसी भावनाओं और उसके शिक्षण पोषण का लक्ष्य हो—

२८—जगृभ्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं, वसूयवो वसुपते वसूनाम् । विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनाम्, अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ।

(ऋ० १० । ४७ । १)

हे धनों के स्वामिन् ! धन चाहते हुए हम ने तेरा दायां हाथ पकड़ा है, हे शूर ! हम तुझे गौओं का स्वामी जानते है, सो हमें अनेक प्रकार के आश्चर्य कर्म कर दिखलाने वाला शक्तिशाली पुत्र दे ।

२९—स्वायुधं स्ववसं सुनीथं, चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम् । चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारम्, अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिंदाः । २ ।

हे इन्द्र हमें उत्तम शस्त्रों वाला, उत्तम रक्षाओं वाला, उत्तम नीति वाला, चारों समुद्रों तक विख्यात, कोषों का धारने वाला, अनथक काम करने वाला, प्रशंसनीय, अकेला

बहुतों के मुंह मोड़ने वाला, आश्चर्य काम कर दिखलाने वाला शक्तिशाली पुत्र दे।

३०—सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्तम्, उरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र। श्रुतऋषिमुग्रमभिमातिषाहम्, अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः। ३।

हे इन्द्र हमें वेद का प्रेमी, परमात्मा का भक्त, उदारकर्मा, विशाल हृदय, गम्भीर, फैली हुई जड़ों वाला, तेजस्वी, शत्रुओं को दबाने वाला, शक्तिशाली, श्रुतऋषि पुत्र दे।

३१—अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं, सहस्रिणं शतिनं वाजमिन्द्र। भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षाम्, अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः। ५।

घोड़ों वाले, रथों वाले, वीरों वाले, सैंकड़ों सहस्रों के मालिक, भद्र दलों वाले, ब्राह्मणों और वीरों से युक्त, दिव्य प्रकाश के जीतने वाले, आश्चर्य काम कर दिखलाने वाले शक्तिशाली पुत्र को दे।

जो माता पिता पुत्र पुत्रियों को ऐसे गुणों वाले बनाना जानते हैं उन्हीं के सन्तान कुल के दीपक होते हैं।

पारिवारिक जनों का परस्पर बर्ताव और प्रेम कैसा होना चाहिये—

३२—सहृदयं सांमनस्यम्, अविद्वेषं कृणोमि वः।

अन्यो अन्यमभिहर्यत, वत्सं जातमिवाघ्न्या ।

(अथर्व ३ । ३० । १)

(हे गृहस्थो !) मैं तुम्हारे लिए आपस में द्वेष को सर्वथा त्याग कर एक हृदय और एक मन हो कर रहने की मर्यादा बनाता हूं, तुम एक दूसरे को ऐसे प्यार करो जैसे गौ अपने सजाए बछड़े को प्यार करती है।

३३–अनुव्रतः पितुः पुत्रः, मात्रा भवतु संमनाः । जाया पत्ये मधुमतीं, वाचं वदतु शन्तिवाम् ।२।

पुत्र पिता का आज्ञाकारी हो, माता के साथ एक मन वाला हो, पत्नी पति के लिए शहद से भरी हुई और शान्ति देने वाली बाणी बोले ।

३४–मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्, मा स्वसार मुत स्वसा । सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा, वाचं वदत भद्रया।३

मत कभी भाई भाई से और मत कभी बहिन बहिन से द्वेष करे। सदा एक दूसरे के साथ सहमत हो कर एक दूसरे के काम में साथी बनकर कल्याणमयी वाणी से परस्पर बोलो।

३५–येन देवा न वियन्ति, नो च विद्वषते मिथः । तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे, संज्ञानं पूरुषेभ्यः ।४

जिस कारण से देवता एक दूसरे से वियुक्त नहीं होते और न एक दूसरे से द्वेष करते हैं, उस ब्रह्म (वेद) को तुम्हारे

घर में स्थापन करता हूं जो तुम्हारे सब पुरुषों के लिए ऐकमत्य उत्पन्न कराने वाला है ।

३६–ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट, सं राधयन्तः सधुराश्चरन्तः । अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्तः, एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ।५।

बड़ों के आज्ञाकारी और उदारहृदय बनो, मत वियुक्त होवो, मिल कर (गृहाश्रम के) भार को उठा कर चलते हुए, सफलता प्राप्त करते हुए और एक दूसरे के लिए सुन्दर प्रिय वचन बोलते हुए (मेरे पास) आओ, मैं तुम्हें एक दूसरे के साथी और एक मन वाले बनाता हूं ।

३७–समानी प्रपा सह वो अन्नभागः, समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि । सम्यञ्चो अग्निं सपर्यत, अरा नाभिमिवाभितः । ६ ।

तुम्हारा प्याऊ एक हो, तुम्हारा अन्नभाग इकट्ठा हो (मिल कर खाओ और पियो) एक जुए में तुम को इकट्ठे जुड़ने की आज्ञा देता हूं । तुम सब मिल कर अग्नि का सेवन करो जैसे अरे रथ की नाभि के चारों ओर होते हैं * ।

३८–सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि, एक-

---

* मिल कर अग्निहोत्र करो वा परमात्मा की भक्ति करो ।

श्रुष्टीन्त्संवननेन सर्वान् । देवा इवामृतं रक्ष-माणाः, सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु ।७।

मैं तुम सब को एक दूसरे के साथी, एक मन वाले, हार्दिक प्रेम के साथ एक समान भोगों वाले बनाता हूं, देवताओं की भांति अमृत (जीवन को अमर बनाने वाले कर्म उपासना और ज्ञान) की रक्षा करते रहो, सांझ सवेरे तुम्हारा परस्पर सौमनस्य (प्रेमभाव और शुभचिन्तन) सदा बना रहे।

पशुओं और मनुष्यों की आरोग्य और नीरोगता के लिए गृहस्थों की रुद्र से प्रार्थना—

३९—इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने, क्षयद्वीराय प्रभ-रामहे मतीः । यथाशमसद् द्विपदे शं चतुष्पदे, विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ।

(ऋ० १ । ११४ । १)

सब वीरों पर शासन करने वाले, बल वाले, भीषण रुद्र * के लिए हम स्तुतियें भेंट करते हैं, जिस से वह हमारे

---

* नियमों की अवज्ञा करने वालों पर रुद्र रोग और मारी डालता है रोग और मारी उस के नियमों की अवज्ञा का फल हैं। और रोगों को दूर करने वाला सब से बडा वैद्य भी वही है—

भिषक्तमं त्वां भिषजां शृणोमि (ऋ० २।३३।४)

अतएव दुखिया आतुर को फिर भी उसी की शरण में आना चाहिये।

मनुष्यों और पशुओं के लिए आरोग्य कारक हो, इस ग्राम में सब प्राणधारी पुष्ट और नीरोग हों ।

४०—मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि, क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते । यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता, तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु । २ ।

हमारे ऊपर कृपा कर और हमारे लिए अरोगता कर, तू जो वीरों पर शासन करता है हम नमस्कार से तेरी पूजा करते हैं । हे रुद्र पिता मनु ने जो अरोगता और नीरोगता (रोगों की अप्राप्ति और रोगों की निवृत्ति) यज्ञ से लाभ की, उसे हम तेरी प्रणीतियों (नेतृत्व) में प्राप्त करें ।

४१—अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया, क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः । सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमाचर, अरिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ।३।

हे कृपालु रुद्र तुझ वीरों पर शासन करने वाले की सुमति को हम प्राप्त हों, आरोग्यप्रद हो कर हमारे घरों में विचर, स्वस्थ वीरों (पुत्रों) वाले हुए हम तेरे लिए हवि होमें ।

४२—त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं, वंकुं कविमवसे निह्वयामहे । आरे अस्मद् दैव्यं हेळो अस्यतु, सुमतिमिद्वयमस्यावृणीमहे । ४ ।

देदीप्यमान, यज्ञ के साधक, शोभा वाले, साक्षात् द्रष्टा रुद्र को हम बुलाते हैं, वह दैव्य क्रोध को हम से दूर फैंके, हम सदा इस की सुमति के ही पात्र हों।

४३–मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं, मान उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्। मा नो वधीः पितरं मोत मातरं, मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषीः।७

मत हमारे बड़े को, मत हमारे छोटे को, मत हमारे युवा को, मत हमारे गर्भ को, मत हमारे पिता को, मत हमारी माता को, मत हमारे सभी प्यारे शरीरों को हे रुद्र! कभी हानि पहुंचा।

४४–मा नस्तोके तनये मा न आयौ, मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। वीरान्मानो रुद्र भामितो वधीः, हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे। ८।

मत हमारे पुत्रों और पोतों में, मत हमारे दूसरे मनुष्यों में, मत हमारी गौओं में, मत हमारे घोड़ों में कभी हानि पहुंचा। मत कभी हमारे वीरों को क्रुद्ध हुआ तू हे रुद्र मार, हाथों में हवि लिए हम सदा ही तुझे बुलाते हैं।

४५–आ रे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं, क्षयद्वीर सुम्न-

मस्मे ते अस्तु । मृळा च नो अधि च ब्रूहि देव, अधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः । १० ।

पशुओं को मारने वाला और मनुष्यों को मारने वाला तेरा शस्त्र हम से दूर हो, हे वीरों पर शासन करने वाले हमारे लिए तेरा आरोग्य हो, हे देव ! हमारे पर अपनी कृपा बनाए रख और हमें आशीर्वाद दे और हमें दुगनी अपनी शरण दे ।

४६–त्वादत्तेभी रुद्र शंतमेभिः, शतं हिमा अशीय भेषजेभिः । व्यस्मद् द्वेषो वितरं व्यंहः, व्यमीवाश्चातयस्व विषूचीः । (ऋ० २ । ३३ । २)

हे रुद्र ! तुझ से दिये गए, सब से बढ़ कर आरोग्य देने वाले औषधों से मैं सौ वर्ष (आयु) पाऊं । द्वेष और बुराई को हम से दूर हटा दे और रोगों को सब ओर दूर भगा दे।

४७–श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि, तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो । पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति, विश्वा अभीतीरपसो युयोधि । ३ ।

हे रुद्र ! तू अपनी शोभा द्वारा सब से श्रेष्ठ है, हे वज्र बाहो ! तू शक्ति वालों में सबसे बढ़ कर शक्ति वाला है, सो हर एक रोग से हमें सुरक्षित रख कर पार लगादे, हरएक पाप के आक्रमण से हमें अलग रख ।

४८—मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिः, मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती । उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिः, भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि । ४ ।

हे शक्तिमन् रुद्र ! हम तुझे न निरे नमस्कारों से, न दुस्तुतियों से, न सहूतियों से तुझे क्रुद्ध करते हैं, अपने औषधों से हमारे वीरों को ऊंचा ले जा, मैं तुझे वैद्यों में वैद्यतम सुनता हूं ।

४९—क्व स्य ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो, यो अस्ति भेषजो जलाषः । अप भर्ता रपसो दैव्यस्य, अभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः । ७ ।

कहां हे रुद्र वह तेरा कृपापूर्ण दायां हाथ है जो आरोग्य देने वाला और शान्तिप्रद है । हे शक्तिमन् ! दैव्य पाप को परे हटाता हुआ मेरी ओर अब क्षमा दृष्टि रख ।

५०—परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः, परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात् । अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व, मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ । १४ ।

रुद्र का शस्त्र हमें लक्ष्य (निशाना) न बनाए उस चमकते हुए की बड़ी दुर्मति हम से दूर जाए, अपने दानी

भक्तों के लिए दृढ़ शस्त्रों को उतार दे, हे उदार ! हमारी सन्तान और सन्तान की सन्तान के लिए कृपावान् हो ।

गृहस्थ का प्रातरुत्थाणीयस्तोत्र—

५१–प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे, प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना । प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं, प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम । (ऋ० ७ । ४१ । १)

प्रभाते हम अग्नि को, प्रभाते इन्द्र को बुलाते हैं प्रभाते मित्र और वरुण को, प्रभाते अश्वियों को, भग को, पूषा को ब्रह्मणस्पति को, प्रभाते सोम और रुद्र को बुलाएं ।

५२–प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम, वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता । आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद्, राजाचिद् यं भगं भक्षीत्याह । २ ।

प्रभाते हम जीतने वाले तेजस्वी भग को बुलाते हैं, जो अदिति से प्रकट हुआ सब को अलग २ बांटने वाला है, जिस से अपने आप को शक्तिमान् मानने वाला और राजा मानने वाला भी कहता है कि हे भग मुझे दे ।

५३–भग प्रणेतर्भग सत्यराधः, भगेमां धियमुद्वा ददन्नः । भग प्र णो जनय गोभिरश्वैः, भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ।३।

हे हमारे प्रणेतः (मार्गदर्शक) हे सच्ची दात वाले भग ! हमें धन देता हुआ हमारी इस आस्तिक बुद्धि की ऊंची रक्षा कर, हे भग ! गौओं और घोड़ों से हमें बढ़ा, हे भग ! हम शूरवीर पुत्रों से वीरों वाले हों ।

५४–उतेदानीं भगवन्तः स्याम, उत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् । उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य, वयं देवानां सुमतौ स्याम ।४।

हम इस (उठने के) समय भाग्यवान् हों, दिनों के अन्त में भाग्यवान् हों, और दिनों के मध्य में भाग्यवान् हों, हे बड़े दाता हम सदा सूर्य के उदय समय देवों की सुमति में हों ।

५५–भग एव भगवाँ अस्तु देवाः, तेन वयं भगवन्तः स्याम । तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति, स नो भग पुरएता भवेह । ५ ।

भग ही हे देवो ! (देने के लिए) ऐश्वर्य से पूर्ण हो, उस से हम ऐश्वर्य से पूर्ण हों, हे भग ! तुझे सभी बुलाते हैं, सो तू हे भग हमारा आगे चलने वाला (नेता) हो ।

५६–अश्वावती गोमतीर्नउषासः, वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः । घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीताः यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः । ७ ।

उषाएं हमारे लिए सदा गौओं घोड़ों और वीर पुत्रों को देती हुई कल्याणमयी हो कर खिलें, घी की बहुतायत देते हुए सब ओर से पुष्टि लाते हुए तुम हे देवो स्वस्तियों (बरकतों) से हमारी रक्षा करो।

एकादशः प्रकाशः (सामाजिक जीवन)

वैदिकवर्णमर्यादा

शुद्ध वैदिकमर्यादा में आर्य एक वर्ण है। दस्यु, दास और शूद्र तीनों आर्येतर हैं। जैसा कि—

१—विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवः, बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्। शाकी भव यजमानस्य चोदिता, विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन्। (ऋ० १।५१।८)

हे इन्द्र आर्यों को पहचान और (उन को) जो दस्यु हैं। व्रतहीनों को शासन करके यजमान के वश में ला * तू शक्तिमान् है अपने पूजक को आगे २ बढ़ाए ले चल, तेरी इन

---

* यहां आर्य वे हैं जो सामाजिक नियमों के पालने वाले और वैदिक धर्म के अनुयायी (यजमान) हैं, उन के विपरीत दस्यु सामाजिक नियमों के न पालने वाले (अव्रत) वेदविरोधी हैं। उन को शासन-शिक्षा द्वारा सुधार कर आर्य का साथी वा शासन-दण्ड द्वारा सीधा करके आर्यों के अधीन करने का यह उपदेश है। यहां मन्त्र में दस्यु आर्य के प्रतियोग में हैं।

सारी महिमाओं को मैं मिल कर आनन्द मनाने के समयों (उत्सवों, यज्ञों, संग्रामों) में प्यार करता हूं।

२—यवं वृकेनाश्विना वपन्ता, इषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा। अभि दस्युं बकुरेणाधमन्ता, उरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय। (ऋ० १।११७।२१)

हे अद्भुत कर्म करने वाले अश्वियो! हल से अनाज को बोते हुए, मनुष्य के लिए पृथिवी से अनाज को दुहते हुए, शस्त्र से दस्यु को परे फैंकते हुए तुम ने आर्य के लिए बहुत बड़ी ज्योति उत्पन्न की।

आर्य खेती से पृथिवी की उपज़ बढाने वाला और दस्यु उस में विघ्न डालने वाला होने से यहां भी दस्यु आर्य का प्रतियोगी हो कर आया है। और—

न यो रर आर्यं नाम दस्यवे। (ऋ० १०।४९।३)

जिस ने (इन्द्र ने) आर्य नाम दस्यु को नहीं दिया है। इस मन्त्र में तो सीधा ही कह दिया है कि आर्य और दस्यु सर्वथा प्रतियोगी हैं।

आर्य और दास भी परस्पर प्रतियोगी हैं।

३—त्वं तानिन्द्रोभयानमित्रान्, दासा वृत्राण्यार्या च शूर। वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैः, आ पृत्सु दर्षि नृणां नृतम। (ऋ० ६।३३।३)

हे शूर इन्द्र ! रुकावट डालने वाले दोनों प्रकार के शत्रुओं दास और आर्य को तू ने मारा, हे वीरों में से बढ़ कर वीर तूने संग्रामों में उन को उत्तम बने वज्रों से बनों की नाईं काट डाला।

४—यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुत, अदेव इन्द्र युधये चिकेतति । अस्माभिष्टे सुषहाः सन्तु शत्रवः, त्वया वयं तान् वनुयाम संगमे ।

(ऋ० १०।३८।३)

हे बहुतों से स्तुति किये गए इन्द्र जो दास वा आर्य तुझ से विमुख हुआ हमें युद्ध के लिए ललकारता है, वे सभी शत्रु हम से पराजित हों, तेरे साथ हुए हम युद्ध में उन को जीतें।

५—अन्तर्यच्छ जिघांसतः, वज्रमिद्राभिदासतः । दासस्य वा मघवन्नार्यस्य वा, सनुतर्यवया वधम् । (ऋ० १०।१०२।३)

हे इन्द्र हमें मारना चाहते हुए वा दास बनाना चाहते हुए के वज्र को अन्दर ही रोक दे, हे धन दाता चाहे वह दास हो वा आर्य उस के शस्त्र को हम से दूर परे हटा दे।

६—हतो वृत्राण्यार्या, हतो दासानि सत्पती। हतो विश्वा अप द्विषः । (ऋ० ६।६०।६)

हे धर्मात्माओं के पती (इन्द्राग्नी) रुकावट डालने वाले

आर्यों और रुकावट डालने वाले दासों को मारो, हमारे शत्रुओं को परे हटाओ।

७–सत्यमहं गभीरः काव्येन, सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः। न मे दासो नार्यो महित्वा, व्रतं मीयाय यदहं धरिष्ये। (अथर्व ६। ११। ३)

यह सच है कि मैं (वरुण) प्रज्ञा में बड़ा गंभीर हूं, और यह भी सच है कि मैं स्वभावतः हर एक उत्पन्न हुए प्राणी को जानता हूं। न दास न आर्य अपनी महिमा से मेरे उस नियम को तोड़ सकता है जिस को मैं धारण करता हूं॥ इत्यादि प्रमाणों से स्पष्ट है कि दास और आर्य प्रतियोगी हैं। आर्य न दस्यु है न दास है।

आर्य और शूद्र भी परस्पर प्रतियोगी हैं—

८–तां मे सहस्राक्षो देवः, दक्षिणे हस्त आदधत्। तयाऽहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः।

(अथर्व ४। २०। ४)

उस (ओषधि) को सहस्रों नेत्रों वाले देव ने मेरे दाएं हाथ पर रक्खा है, उस से मैं सब को देखता हूं जो शूद्र है और जो आर्य है।

९–प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां, शूद्राय

चार्याय च । यस्मै च कामयामहे, सर्वस्मै च विपश्यते । (अथर्व १९ । ३२ । ८)

हे दर्भ मुझे ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए प्यारा बना, शूद्र और आर्य के लिए प्यारा बना । जिस से हम प्यार करते हैं, उस के लिए और हरएक देखने वाले के लिए प्यारा बना।

१०–प्रियं मा कृणु देवेषु, प्रियं राजसु मा कृणु । प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये * ।

(अथर्व १९ । ६२ । १)

मुझे देवताओं में प्यारा बना, मुझे राजाओं में प्यारा बना। जो कोई भी दृष्टि रखता है चाहे शूद्र हो वा आर्य उस सब का मुझे प्यारा बना।

इत्यादि प्रमाणों से स्पष्ट है, कि शूद्र और आर्य शब्द प्रतियोगी हैं । आर्य शूद्र नहीं और शूद्र आर्य नहीं ।

इस प्रकार वैदिकमर्यादा के अनुसार मानवसमाज के दो ही प्रधान विभाग होते हैं । एक आर्य दूसरा आर्येतर ।

---

* इन मन्त्रों में–'अर्यः, अर्याय, अर्ये' पदच्छेद पदपाठ के विरुद्ध है । पद पाठ में 'आर्यः, आर्याय, आर्ये' पाठ स्पष्ट कर दिया है । दूसरा यह कि सब का प्यारा बना कह कर उस सब के दो विभाग किये हैं शूद्र और आर्य । यदि अर्य पद लिया जाएं तो शूद्र और अर्य (वैश्य) इन दोनों में सब मनुष्य नहीं आते ।

११–ससानत्याँ उत सूर्यं ससान, इन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् । हिरण्ययमुत भोगं ससान, हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् । (ऋ० ३ । ३४ । ९)

इन्द्र ने हमारे लिए सूर्य दिया है, वह हमें घोड़े देता है और बहुत सी भोग्य वस्तुओं (दूध, दही, मलाई, मक्खन आदि) के देने वाली गौएं देता है। वह सुवर्ण और उत्तम भोग देता है और दस्युओं को मार कर आर्यवर्ण की पूरी २ रक्षा करता है।

यहां आर्य को एक वर्ण कहा है जो अपने अन्दर पूरी एकता रखता है। सारे आर्यों का एक बल, एक यश, एकजाति है अतएव किसी एक भी आर्य का हानि लाभ सारी जाति का हानि लाभ है।

१२–स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः, पुरो विभिन्दन्नचरद् वि दासीः । विद्वान् वज्रिन् दस्यवे हेतिमस्य, * आर्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र । (१ । १०३ । ३)

* श्री सायणाचार्य ने इस 'अस्य' को क्रियापद न समझ कर इदम् का षष्ठी का एक वचन माना है। यह इतने बडे विद्वान् से असम्भावित सी भूल है, पर है वहुत बडी भूल। इस से वाक्य में कोई क्रियापद न रहने से एक तो 'विसृज' का अध्याहार करना पड़ा है, दूसरा अर्थ का स्वारस्य भी जाता रहा है।

अपनी भुजा में वज्र लिए और अपने बल पर भरोसा रखते हुए वह दासों के किलों को तोड़ता हुआ विचरता है। हे वज्रिन्! पहचानता हुआ तू दस्यु के लिए शस्त्र को फैंक, हे इन्द्र आर्यों के विजय और यश को बढ़ा।

देव की कृपा का पात्र भी सारे ही आर्यवर्ण को समानरूप से बतलाया गया है—

१३—अहं भूमिमददामार्याय, अहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय। अहमपो अनयं वावशाना:, मम देवासो अनुकेतमायन्। (ऋ० ४। २६। २)

मैंने भूमि आर्य को दी है, मैंने वृष्टि उस के लिए दी है जो मेरे लिए देता है, मैं शब्द करते हुए जलों को आगे ले जाता हूं, देवता मेरे ज्ञान के अनुसार चलते हैं।

१४—आभि: स्पृधो मिथितीररिषण्यन्, अमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र। आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीः, आर्याय विशोऽवतारीर्दासीः।
(ऋ० ६। २५। २)

इन (सहायताओं) से सामना करने वाले शत्रुओं को हिला दे और हम में से किसी को हानि न पहुंचाता हुआ शत्रु के क्रोध को हिला दे। इन (सहायताओं) से तू सारे शत्रुओं

को इधर उधर भगादे, आर्य के लिए दासों की प्रजाओं को नाश कर।

इस प्रकार शुद्ध वैदिकमर्यादा में जातीयता की दृष्टि से सारी आर्यजाति एक है। इस दृष्टि से उस में कोई भेद नहीं। सब एक समान आर्य हैं। कर्तव्य और जीविका की दृष्टि से आर्य के अवान्तर भेद ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य हैं।

अब यह जाति धर्मपरायण रहे और स्वतन्त्र रहे, इस प्रयोजन के साधन दो तेज वा बल हैं—ब्रह्म और क्षत्र। वह आत्मबल जिस से मनुष्य परमेश्वर का हो कर परमेश्वर को अपना बना लेता है*ब्रह्मबल है और क्षत्रबल धर्मानुसार शासन करने का बल है। ये दोनों ही बल हरएक आर्य में होने चाहियें। हरएक को परमेश्वर के साथ सच्चा सम्बन्ध बनाए रखना चाहिये यही ब्रह्मबल है और हरएक आर्य कन्या को विवाह में यह आशीर्वाद मिलता है—वीरसूर्देवकामा (१०।८५।४४) वीर जननी हो और परमेश्वर की भक्त हो, यह क्षत्रबल है तथापि ये बल प्रत्येक में एक समान नहीं होते। जो ब्रह्मबल में सबसे आगे निकल जाते हैं, और सारी जाति के अन्दर इस बल को जाग्रत् रखना अपने जीवन का लक्ष्य बना लेते हैं, वे ब्राह्मण कहलाते हैं। जाति को धर्म का मार्ग दिखलाना और अपने आत्मबल से जाति का कल्याण चाहना और उस का बढ़ाना उन का कर्तव्य हो जाता है। ये ही धर्माचार्य आर्यपरिवारों के

---

* त्वमस्माकं तव स्मसि (ऋ० ८। ९२। ३२) तू हमारा है हम तेरे हैं। 'अस्माकमस्तु केवलः (ऋ० १ । ७ । १०) वह केवल हमारा हो

पुरोहित होते हैं। जो अपने ब्रह्मबल से अपने यजमानों में एक नया जीवन उत्पन्न कर देते हैं, जैसाकि—

१५—सꣳशितं मे ब्रह्म, सꣳशितं वीर्यं बलम् ।
संशितं क्षत्रं जिष्णु, यस्याहमस्मि पुरोहितः ।
(यजु० ११ । ८१)

मेरा ब्रह्मबल बड़ा तीक्ष्ण है, मेरी शक्ति और मेरा बल तीक्ष्ण हैं, वह क्षत्र सदा विजय पाने वाला हो कर तीक्ष्ण हो गया है जिस का मैं पुरोहित हूं।

१६—उदेषां बाहू अतिरम्, उद्वर्चो अथो बलम् ।
क्षिणोमि ब्रह्मणाऽमित्रान्, उन्नयामिस्वाँ अहम् ।८२

मैंने इन की भुजाओं को ऊँचा उठा दिया है, इनके तेज और बल को ऊँचा कर दिया है। मैं अपने ब्रह्मबल से शत्रुओं का क्षय करता हूं और अपनों को ऊँचा उठाता हूं।

१७—तीक्ष्णीयांसः परशोः, अग्नेस्तीक्ष्णतरा उत । इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसः, येषामस्मि पुरोहितः । (अथर्व ३ । १९ । ४)

कुल्हाड़े से बढ़ कर वे तीक्ष्ण हैं, अग्नि से भी बढ़ कर तीक्ष्ण हैं, हां इन्द्र के वज्र से भी बढ़ कर तीक्ष्ण हैं, जिन का मैं पुरोहित हूं।

१८–एषामहमायुधा संस्यामि, एषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि । एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्णु, एषां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः । ५ ।

मैं इन के शस्त्रों को तीक्ष्ण बनाता हूं, इन के राष्ट्र को उत्तम वीरों वाला बना कर बढ़ाता हूं, इनका क्षत्रबल पुराना न हो कर सदा विजयी हो, इन के चित्त को सब देव सहायता दें ।

अब जैसे ब्रह्मबल में सब एक समान नहीं होते, इसी प्रकार क्षत्रबल में भी सब एक समान नहीं होते, तब जो क्षत्रबल में सबसे आगे निकल जाते हैं वे ही क्षत्रिय कहलाते हैं–क्षत्रस्य वा एतद्-रूपं यद् राजन्यः (श० ब्रा० १३ । १ । ५ । ३) क्षत्र का यह रूप है जो क्षत्रिय है ।

ऐसे क्षत्रिय का सामाजिक कर्तव्य राष्ट्र की रक्षा और शासन है–

१९–असमं क्षत्रमसमा मनीषा, प्रसोमपा अपसा सन्तु नेमे । ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति, महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च । (ऋ० १ । ५४ । ८)

हे इन्द्र तेरा क्षत्रबल अद्वितीय है और अद्वितीय तेरी प्रज्ञा है । ये सोम पीने वाले (तेरे भक्त) अपने कर्म से

(पृथिवी पर) फैलते जाएँ, जो तुझ दाता के महिमा वाले क्षत्र, धैर्य और शौर्य को बढ़ाते हैं।

२०—स शेवृधमधिधा द्युम्नमस्मे, महि क्षत्रं जनाषाळिन्द्र तव्यम् । रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन्, राये च नः स्वपत्या इषे धाः ।

(ऋ० १ । ५४ । ११)

हे इन्द्र ! हमारे अन्दर कल्याण के बढ़ाने वाले ऐश्वर्य, महिमा वाले क्षत्रबल और शत्रुओं पर प्रबल आने वाले धैर्य का स्थापन कर। हमारे उदारहृदय नेताओं की रक्षा कर और हम सब में धन, अन्न और उत्तम संतान के लिए शक्ति डाल।

२१—अस्माकमग्ने मघवत्सु धारय, अनामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम्। वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं, वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः । (ऋ० ६।८।६)

हमारे उदारजनों में हे अग्ने (किसी के आगे) न झुकने वाला क्षत्रबल और न बूढ़ी होने वाली उच्च वीरता दे, हे वैश्वानर ! अग्ने तेरी सहायताओं से हम सौ गुना और सहस्र गुना बल को जीतें।

क्षत्रबल में आगे बढ़ा हुआ पुरुष जिस लक्ष्य को सामने रख कर क्षत्रिय कहलाता है वह वेद में इस प्रकार दिखलाया है—

२२–त्यान्नु क्षत्रियाँ अवः, आदित्यान् याचिषामहे । सुमृळीकाँ अभिष्टये । (ऋ० ८।६७।१)

अब हम उन आदित्य क्षत्रियों से सहायता मांगते हैं जो सहायता के लिए बड़े दयावान् हैं।

२३–धृतव्रताः क्षत्रिया यज्ञनिष्कृतः, बृहद्दिवा अध्वराणामभिश्रियः । अग्निहोतार ऋतसाप अद्रुहः, अपो असृजन्ननु वृत्रतूर्ये (ऋ० १०।६६।८)

नियम के पालने वाले, यज्ञों के मार्गों को बनाने वाले (अनार्यों को आर्य बनाने वाले) बड़े तेजस्वी, यज्ञों की शोभाएँ, अग्नि स्वयं जिन का होता है, सत्य के सेवन करने वाले, किसी से द्रोह न करने वाले क्षत्रिय वृत्र के वध में जलों को छोड़ते हैं * ।

उपर्युक्त दो वर्गों से भिन्न सारा आर्यवर्ग विश् वा वैश्य कहलाता है—

तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः—तीन हैं आर्य प्रजाएँ जो प्रकाश को मुख्य रखती हैं (ऋ० ७।३३।७) राष्ट्र

---

* यहां दैवी शक्तियों को क्षत्रिय कह कर आर्तों की रक्षा, नियम का स्वयं पालन, दूसरों को नियम पर चलने के लिए विवश करना, किसी से द्रोह न करना और विघ्नबाधाओं को हटा कर शान्ति जल बरसाना उन का कर्तव्य कर्म बतलाया है।

का बड़ा भाग विश् ही होते हैं किन्तु राष्ट्र की उन्नति तीनों की ही उन्नति पर निर्भर है।

२४—ब्रह्म जिन्वतमुत जिन्वतं धियः, हतं रक्षांसि सेधतममीवाः। सजोषसा उषसा सूर्येण च, सोमं सुन्वतो अश्विना। (ऋ० ८।३५।१६)

हे अश्वियो! हमारे ब्रह्मबल को बलवत् बनाओ और हमारे विचारों को बलवान् बनाओ। राक्षसों को मारो और रोगों को दूर भगाओ। उषा और सूर्य के साथ मिल कर रस बहाने वाले के सोम पियो।

२५—क्षत्रं जिन्वतमुतजिन्वतं नॄन्, हतं रक्षांसि सेधतममीवाः। सजोषसा उषसा सूर्येण च, सोमं सुन्वतो अश्विना। १७।

हमारे क्षत्रबल को बलवत् बनाओ, हमारे शूरवीरों को बलवान् बनाओ। राक्षसों को मारो......।

२६—धेनूर्जिन्वत मुत जिन्वतं विशः, हतं रक्षांसि सेधतममीवाः। सजोषसा उषसा सूर्येण च, सोमं सुन्वतो अश्विना। १८।

हमारी धेनुओं को बलवती बनाओ, हमारे विशों (वैश्यों=लोगों) को बलवान् बनाओ। राक्षसों को मारो......।

इन मन्त्रों में क्रमशः ब्रह्म, क्षत्र, विश् तीनों को आर्य जाति के अंग बतलाया है। इन में से ब्रह्म क्षत्र बल हैं इसलिए बल के रूप में (नपुंसक लिङ्ग) कहे हैं। विश सर्वसाधारणजन हैं। ये जीविकाप्रधान होते हैं इसलिए इनके साथ धेनु शब्द कहा है, जो सब प्रकार की जीविकाओं का उपलक्षण है। सो क्षत्रबल सब में अपेक्षित है ही और ब्राह्मण का कर्तव्य भी वैश्य और क्षत्रिय दोनों को ब्रह्मबल से सम्पन्न रखना है। इधर वीरसू आशीर्वाद जैसा क्षत्रिय कन्याओं के लिए है वैसा ही ब्राह्मण और वैश्य कन्याओं के लिए है। वेद में पुत्रों के लिए अकेला वीर शब्द बहुधा प्रयुक्त हुआ है। आर्यजाति की सभी कन्याएं अभी तक भाइयों के लिए वीर शब्द का प्रयोग करती हैं, इसलिए ब्रह्म क्षत्र बल आर्यमात्र में अपेक्षित हैं। भेद इतना ही है कि जो ब्रह्मरूप हो रहा है और जिसने आर्यजाति को धर्मपरायण रखने का भार उठा लिया है वह आर्य ब्राह्मण है और जो क्षत्ररूप हो रहा है और जिसने राष्ट्र की रक्षा और वृद्धि का भार अपने ऊपर उठा लिया है वह आर्य क्षत्रिय है शेष सब आर्य वैश्य हैं। दूसरा भेद उन की जीविकाओं में स्वतः ही होजाता है। वैश्य की ब्रह्म क्षत्र वृत्ति से भिन्न सभी वृत्तियां हैं, केवल दासपन वर्जित है, जो कि आर्यत्व के ही विरुद्ध है। क्षत्रिय की वृत्ति रक्षा के पलटे में लिए कर आदि से चलती है। ब्राह्मीवृत्ति दूसरों की श्रद्धा और कृतज्ञता पर अवलम्बित है। पर वैदिकमर्यादा के अनुसार आदर्श आर्य वह है, जिस में ब्रह्म और क्षत्र तेज पूर्णरूप में हों जीविका चाहे कोई हो।

२७-कारुरहं ततो भिषग्, उपलप्रक्षिणी नना। नानाधियो वसूयवः, अनुगा इव तस्थिम। इन्द्रायेन्दो परिस्रव। (ऋ० ९। ११२। ३)

मैं ऋत्विज् हूं, मेरा पिता वैद्य है माता चक्की पीसती है, नाना उपायों से धन चाहते हुए हम अपनी इच्छाओं के पीछे लगे हैं जैसे गौओं के, हे सोम इन्द्र के लिए बह।

२८-यद् युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं, घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम्। अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं, वयं धना शूरसाता भजेमहि।

(ऋ० १। १५७। २)

जब तुम हे अश्वियो! अपने शक्ति वाले रथ को जोड़ते हो, हमारे क्षत्रबल को घी और मधु के साथ सेचन करो (क्षत्रबल को बहुत ही पुष्ट करो) और हमारे ब्रह्मबल को हमारे मनुष्यों में बलवत् बनाओ, हम शूरों के संग्रामों में धनों को जीतें।

२९-इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं, चोभे श्रियमश्नुताम्। मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा।

(यजु० ३२। १६)

यह मेरा ब्रह्मबल और क्षत्रबल दोनों पूरी शोभा पावें,

देवता मुझ में उत्तम श्री स्थापन करें, उस तुझ (श्री) के लिए सुहुत हो।

३०—यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च, सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं, यत्र देवाः सहाग्निना॥

(यजु० २० । २५)

जहां ब्रह्म और क्षत्र दोनों पूरे २ साथी होकर चलते हैं, उस देश को मैं पवित्र जानता हूं जहां देव अग्नि के साथ हैं।

इस मन्त्र का आशय यह भी है कि ब्रह्म और क्षत्र यदि भिन्न व्यक्तियों में हो, तौ भी इन दोनों बलों का मेल ही देश को पुण्यदेश बनाता है।

अब मानव समाज का दूसरा विभाग जो आर्येतर है, उस के विषय में राष्ट्रमर्यादा तो यह है कि शत्रुओं के साथ शत्रुओं का बर्ताव और मित्रों के साथ मित्रों का बर्ताव, शूद्र जो आर्यों का मित्र है वा स्मार्त धर्म में साथी है वह वैसा ही समाज का अंग है जैसा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य है और आर्यों के हृदय में उस के लिए वैसी ही शुभ आकांक्षा है जैसी ब्राह्मण क्षत्रिय के लिए है। जैसे—

३१—रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु, रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु, मयि धेहि रुचा रुचम्॥

(यजु० १८ । ४८)

(हे अग्ने !) हमारे ब्राह्मणों में तेज स्थापन कर, हमारे

क्षत्रियों में तेज स्थापन कर, हमारे वैश्यों और शूद्रों में तेज स्थापन कर, मुझ में अपने तेज से तेज डाल (और देखो पूर्व १२९ पृ०)।

३२-ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्, बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद् वैश्यः, पद्भ्यां शूद्रो अजायत । (ऋ० १० । ९० । १२)

ब्राह्मण इस (विराट् पुरुष वा मानवसमाज) का मुख है, क्षत्रिय भुजाएं हैं, वैश्य ऊरू हैं और शूद्र पाओं है (एक ही शरीर के भिन्न २ अंग हैं इसलिए हरएक मनुष्य का धर्म है कि सारे समाज की रक्षा में अपनी रक्षा समझे)।

दास आर्य का शत्रु है वह वैसे ही बर्ताव का पात्र है—

३३-येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि, यो दासं वर्णमधरं गुहाऽकः । श्वघ्नीव यो जिगीवाँल्लक्षमादत्, अर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ।

(ऋ० २ । १२ । ४)

हे मनुष्यो इन्द्र वह है जिस ने इस सब को गतिशील बनाया है, जो दास वर्ण को नीचे गुफा में डालता है और शिकारी की भांति लक्ष को जीत कर शत्रु के पुष्ट (धन धान्य) को ले लेता है।

दासों का ही वह भेद जो पापयोनि (जघायमपेशा लोग) हैं दस्यु कहे हैं—

३४—अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुः, अन्यव्रतो अमानुषः। त्वं तस्यामित्रहन्, वधर्दासस्य दम्भय। (ऋ० १०।२२।८)

कर्महीन, अन्यव्रत (सामाजिक नियमों के विरुद्ध नियम रखने वाला) अमानुष (मनुष्य व्यवहार से शून्य, असभ्य) दस्यु जो हमें गिनती में नहीं लाता, तू हे शत्रुओं के मारने वाले उस दास को अपने शस्त्र से मार।

आर्येतरों का आर्य वर्ण में प्रवेश—

समय विशेष पर तो शत्रु के साथ शत्रु का वर्ताव करने के सिवाय गति ही नहीं होती, वहां राष्ट्र के विरोधियों की ओर राष्ट्र का जो कर्तव्य है, वह दिखला दिया है। पर सब से उच्च वर्ताव जो मनुष्य को अपने शत्रु के साथ दिखलाना चाहिये, विशेषतः ब्राह्मण को, वह उन को शत्रुता से हटा कर मित्र बनाना है और उस से भी बढ़ कर मनुष्यमात्र को आर्य बनाना है, यही उच्च धर्म है यही आदेश है यही उपदेश है यही वेद का रहस्य है।

३५—ब्रह्म गामश्वं जनयन्त ओषधीः, वनस्पतीन् पृथिवीं पर्वतां अपः। सूर्यं दिवि रोह-

यन्तः सुदानवः, आर्या व्रता विसृजन्तो अधि-क्षमि । (ऋ० १० । ६५ । ११)

वे जो अन्न गौ घोड़े ओषधि वनस्पति क्षेत्र मेघ और जलों को उत्पन्न करते हुए, सूर्य को द्यौ में उदय करते हुए, बड़े दानी देवता सारी पृथिवी पर आर्य व्रतों को फैला रहे हैं (उन से हम मांगते हैं–अपने कार्यों की सिद्धि चाहते हैं) ।

यहां दिव्य शक्तियों का स्वभाव यह बतलाया है कि वे लोगों को आर्य व्रतों की ओर झुकाती हैं, इससे इन देवों के अधिष्ठाता की इच्छा यही सिद्ध होती है कि सब लोग आर्य बनें । जो भी सत्य है वही सब आर्यव्रत है । अन्ततः सत्य का ही विजय होना है । भूलें हो हो कर भी अन्ततः सत्य प्रकाशेगा और वही स्थिर रहेगा ।

३६–इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः, कृण्वन्तो विश्वमार्यम । अपघ्नन्तो अराव्णः । (ऋ० ९ । ६३ । ५)

इन्द्र को बढ़ाते हुए, कर्म शील, सब को आर्य बनाते हुए और छीनने वाले को परे हटाते हुए (इन्द्र को प्राप्त होते हैं) ।

इस आज्ञा के अनुसार जो वैदिक धर्म को ग्रहण करता है वह आर्यवर्ण में मिल जाता है । वह न दस्यु रहता है न दास न शूद्र । अतएव अब जो हमारे सधर्मी हैं, उन को शूद्र कहना भूल है ।

जीविकाएँ—कृषिकर्म ।

३७–क्षेत्रस्य पतिना वयं, हितेनेव जयामसि । गामश्वं पोषयित्न्वा, स नो मृळातीदृशे ।

(ऋ० ४ । ५७ । १)

क्षेत्र का पति (परमात्मा) जो हमारे सखा के तुल्य है उसके साथ हम गौ घोड़े और पुष्टि कारक (अन्न आदि) को जीतते हैं (अपने उद्योग से प्राप्त करते हैं) वह ऐसे कामों (कमाई के कामों) में बरकत देवे ।

३८–क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं, धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व । मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतं, ऋतस्य नः पतयो मृळयन्तु । २ ।

हे क्षेत्र के पति ! धेनु जैसे दूध (दुहाती है) वैसी मिठास से भरी हुई पानी की लहर (आकाश से) हमारे अन्दर दुहा दो, जो मधु टपकाते हुए अच्छे पुने हुए घृत की नाईं पूरी शुद्ध हो, ऋत * के पति हमें बरकत दें ।

३९–मधुमतीरोषधीर्द्याव आपः, मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् । क्षेत्रस्यपतिर्मधुमान् नो अस्तु, अरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम । ३ ।

---

* ऋत=सृष्टि नियम जिन से मेंह बरसते हैं और अनाज पुष्ट होते हैं।

ओषधियें द्यौ और जल के प्रवाह हमारे लिए मधु से भरे हों अन्तरिक्ष हमारे लिए मधु से भरा हो । क्षेत्र का पति हमारे लिए मधुमान् हो, और हम सदा अरोग अक्षत हुए उस की आज्ञा पर चलते रहें ।

४०–शुनं वाहाः शुनं नरः, शुनं कृषतु लाङ्गलम् । शुनं वरत्रा वध्यन्तां शुन मष्ट्रा मुदिङ्गय ।४

हमारे वाह (बैल, घोड़े, ऊंट) और मनुष्य आनन्द-पूर्वक काम करें, हल अनायास भूमि को उथले, जोत अनायास बांधे जाएँ और छांटे को अनायास ऊपर उठाओ ।

४१–शुनासीराविमां वाचं जुषेथाम्, यद् दिवि चक्रथुः पयः । तेनेमामुपसिञ्चतम् ।५।

हे शुन हे सीर * ! मेरे इस वचन को स्वीकार करो, जो जल आकाश में तुम ने तय्यार किया है उस से इस भूमि को सींचो ।

४२–अर्वाची सुभगे भव, सीते वन्दामहे त्वा । यथा नः सुभगाऽससि, यथा नः सुफलाऽससि ।

हे सौभाग्य वाली सीता (ओड़) हमारी ओर झुक, हम तेरा

---

* शुन वायु और सीर सूर्य (यास्क)

आदर करते हैं जिससे कि तू हमारे लिए सौभाग्य वाली होवे, हमारे लिए अच्छे फलों वाली होवे।

४३–इन्द्रः सीतां निगृह्णातु, तां पूषाऽनुयच्छतु। सा नः पयस्वती दुहाम्, उत्तरामुत्तरां समाम्।६।

इन्द्र सीता को अपने अधीन रक्खे, पूषा उसको बरकत देवे, वह दूध (पुष्टि कारक अन्नों) से पूर्ण हुई अगले २ वर्ष हमारे लिए दूध की धाराएं बहाती रहे।

४४–शुनं फाला विकृषन्तु भूमिं, शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः। शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः, शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम्।८।

हमारे फाले भूमि को अनायास उथलें, किसान आनन्द-पूर्वक वाहों के पीछे चलें, मेघ मधु और दूधतुल्य जलों से (सींचे) हे शुन हे सीर हम में सुख सौभाग्य स्थापन करो।

४५–युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं, कृते योनौ वपतेह बीजम्। गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो, नेदीय इत् सृण्यः पक्व मेयात्। (ऋ० १०।१०१।३)

हल जोतो, जुए फैलाओ, तय्यार किये हुए इस खेत में बीज बोओ। वचन के अनुसार हमारा अन्न पुष्ट हो और दरांतियें पके हुए के निकट पहुंचें।

४६–घृतेन सीता मधुना समज्यतां, विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः । ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमाना, अस्मान् सीते पयसाऽभ्यावव्रृत्स्व । (यजु० ११।७०)

सूर्य की किरणों और मरुतों की अनुकूलता पाई हुई सीता घी (पुष्टजलादि) से सिंचित हो । हे सीते तू बलवती हुई और जल से तृप्त हुई दूध (पुष्ट रसों) के साथ हमारी ओर बारबार लौट ।

सिञ्चाई के साधन कुएँ और नहरें—

४७–इष्कृताहावमवतं, सुवरत्रं सुषेचनम् । उद्रिणं सिञ्चे अक्षितम् । (ऋ० १० । १०१ । ६)

मैं उस कुएं से सिञ्चाई करता हूं, जिस की माहल बड़ी दृढ़ है जो अनायास सिंचाई करने वाला, बड़ा गहरा और कभी न सूखने वाला है ।

४८–स यह्व्योऽवनीर्गोष्वर्वा, जुहोति प्रधन्यासु सस्रिः । अपादो यत्र युज्यासोऽरथाः, द्रोण्यश्वास ईरते घृतं वाः । (ऋ० १० । ९९ । ४)

वह बलवान् कर्मशील उत्तम धन देने वाली भूमियों में बड़ी २ नदियों को (नहरों द्वारा) ला होमता है, जहां उन नदियों की सहेलियां (राजवाहे और प्रणालियां) न पैर रखती

हैं न रथों पर सवार होती हैं तो भी बड़ी तेज़ दौड़ती हुई पानी के ऐसे प्रवाह को उन भूमियों में धकेलती हैं जो उन के लिए मानो घृत है।

व्यापारी की आशाएं और प्रार्थनाएँ—

४९–इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि, स न ऐतु पुरएता नो अस्तु। नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं, स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम्। (अथर्व ३।१५।१)

मैं व्यापारी * इन्द्र को प्रेरता हूं, वह हमारे साथ हो और हमारा पुरएता (आगे चलने वाला) बने। वह जो सब पर ईशन करता है हमारे मार्ग से शत्रुओं लुटेरों और मृगों (हिंस्र पशुओं को) दूर हटाता हुआ हमारे लिए धनदाता हो।

५०–ये पन्थानो बहवो देवयानाः, अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति। ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन, यथा क्रीत्वा धनमाहराणि।२।

वे बहुत से मार्ग जिन से देवता आते जाते हैं जो द्यौ और पृथिवी के मध्य में चलते हैं वे दूध और घी से मुझे प्यार करें जिससे कि मैं क्रयविक्रय करके बहुत सा धन लाऊं।

---

* इन्द्र को व्यापारी इस अभिप्राय से कहा है कि हमारी स्तुतियों और आहुतियों के पलटे हमें धन देता है।

५१–इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन, जुहोमि हव्यं तरसे बलाय । यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमानः, इमां धियं शतसेयाय देवीम् ।३।

हे अग्ने (धन की) कामना करता हुआ मैं विजय और बल के लिए समिधा और घी के साथ हव्य को अर्पण करता हूं। मन्त्र से तेरी वन्दना करता हुआ मैं सैंकड़ों धनों की प्राप्ति के लिए इस दिव्य प्रार्थना को तेरे अर्पण करता हूं *।

५२–इमामग्ने शरणिं मीमृषो नः, यमध्वान मगाम दूरम् । शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च, प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु । इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां, शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च ।४।

हे अग्ने हमारी भूल को मेट दे चाहे हम लम्बा मार्ग भी लंघ चुके हों। हमारा क्रयविक्रय हमारे लिए लाभदायक हो प्रतिव्यवहार (इधर से लेजाने और उधर से लाने का व्यवहार) मुझे फलवान् बनाए। (हे इन्द्र हे अग्नि) तुम दोनों

---

* विजय के लिए–अपनी कमाई का धन पाने के लिए ! बल के लिए–कमाने के समर्थ करने वाले बल बुद्धि कौर स्फूर्ति आदि के लिए, मैं श्रद्धा से अग्नि में होम करता हूं और शक्तिभर मन्त्रों से स्तुति करता हूं, फलदाता मुझे कमाने के योग्य बल दे और सैंकड़ों धन दे ।

एकमत होकर स्वीकार करो, जिस से हमारा घूमना और बड़े २ कामों में हाथ डालना लाभदायक हो * ।

५३–येन धनेन प्रपणं चरामि, धनेन देवा धनमिच्छमानः । तन्मे भूयो भवतु मा कनीयः, अग्ने सातघ्नो हविषा निषेध ।५।

हे देवो ! धन से धन चाहता हुआ मैं जिस धन से व्यापार चलाता हूं वह मेरा बढ़ता चला जाय, मत कभी घटे, हे अग्ने लाभ के नाशकों को हवि से परे हटा ।

५४–येन धनेन प्रपणं चरामि, धनेन देवा धनमिच्छमानः । तस्मिन् म इन्द्रो रुचिमादधातु, प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः ।६।

हे देवो ! धन से धन चाहता हुआ मैं जिस धन से व्यापार चलाता हूं, उस में इन्द्र प्रजापति सविता सोम और अग्नि देव मुझे रुचि देवें ।

५५–उप त्वा नमसा वयं, होतर्वैश्वानर स्तुमः । स नः प्रजास्वात्मसु, गोषु प्राणेषु जागृहि ।७।

हे वैश्वानर (सब मनुष्यों के होतः अग्ने) हम विनय-

---

* अथवा (चरितं) हमारा वर्ताव और (उत्थितं) उदय लाभदायक हो ।

पूर्वक तेरी स्तुति करते हैं। तुम हमारी सन्तान पर, हमारे आत्माओं पर, हमारे पशुओं पर और हमारे जीवनों पर सदा अपनी दृष्टि रक्खो।

५६–विश्वाहा ते सदमिद् भरेम, अश्वायेव तिष्ठते जातवेदः। रायस्पोषेण समिषा मदन्तः, मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम। ८।

हे जातवेदः! हम सदा ही दिन २ तेरे लिए हवि लावें जैसे (अश्वशाला में) खड़े घोड़े के लिए (घास लाते हैं)। धन की पुष्टि और अन्न के साथ मिल कर आनन्द भोगते हुए तेरे सेवक हे अग्ने कभी हानि न उठाएं।

व्यापार में सब को सदा अपना वचन पालना चाहिये।

५७–भूयसा वस्नमचरत् कनीयः, अविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन्। स भूयसा कनीयो नारिरेचीद्, दीना दक्षा विदुहन्ति प्रवाणम्।

(ऋ० ४।२४।९)

वह जो बहुत बड़े (पण्य) से थोड़ा मूल्य लेता है और फिर उस के पास जा कहता है कि मैंने नहीं बेचा है, वह और लेकर अपने उस थोड़े को पूरा नहीं कर सकता, प्रमादी और चतुर सब अपने वचन को दुहते हैं (अपने वचन का दूध पीते हैं)।

पशुओं का पालन—

५८—य उदानड् व्ययनं, य उदानट् परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तनम्, अपि गोपा निवर्तताम् ।

(ऋ० १० । १९ । ५)

जो पशुओं के खोज लगाने, दूर २ के मार्ग जानने, चराने और लौटा लाने में कुशल है ऐसा गोप हमारी ओर झुके।

समुद्रादि और खनियों (कानों) से धन की प्राप्ति—

५९—निधीयमानमपगूहमप्सु, प्र मे देवानां व्रतपा उवाच। इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष, तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् । (ऋ० १० । ३२ । ६)

मुझे देवों के व्रतों के रक्षक (इन्द्र) ने कहा है कि जलों के अन्दर रक्खा हुआ खज़ाना छिपा पड़ा है, हे अग्ने इन्द्र ने जानते हुए तुझ पर दृष्टि डाली है, सो मैं उस से अनुशासन पाकर आया हूं ।

६०—अक्षेत्रवित् क्षेत्रविदं ह्यप्राट्, स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः । एतद्वै भद्रमनुशासनस्य, उत स्रुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम् । ७ ।

क्षेत्र के न समझने वाला क्षेत्र के समझने वाले (कहां क्या है जानने वाले) से पूछता है और वह क्षेत्र के समझने

वाले का अनुशासन पाकर चल पड़ता है, अनुशासन का यही भला फल है कि वह सीधी शक्तियों का मार्ग पालेता है ।

द्वादशः प्रकाशः—(सामाजिक जीवन २)

राज्यव्यवस्था (राजा का वरण और उसके कर्तव्य) ।

१—भूतो भूतेषु पय आदधाति, स भूताना मधिपतिर्बभूव । तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं, स राजा राज्यमनुमन्यता मिदम् । (अथर्व ४।८।१)

स्वयं ऐश्वर्य वाला हो कर जो सब लोगों में दूध (उत्तम भोग्य) ला डाले, वह लोगों का अधिपति होवे । उस का राजसूय (यज्ञ) मृत्यु स्वयं करता है, ऐसा राजा इस राज्य को स्वीकार करे ।

२—त्वां विशो वृणतां राज्याय, त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः । वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व, ततो न उग्रो विभजा वसूनि । (अथर्व ३।४।२)

प्रजा तुझे राजकार्य करने के लिए चुनें, पांचों देवी दिशाएं तुझे चुनें, राष्ट्र के शरीर में तू उच्च स्थान में स्थित हो और तेजस्वी बन कर हमें ऐश्वर्य बांट कर दे ।

३—व्याघ्रो अधिवैयाघ्रे, विक्रमस्व दिशो

मही: । विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु, आपो दिव्याः पयस्वतीः । (अथर्व ४ । ८ । ४)

शेर के चर्म पर बैठ कर शेर बन कर दूर दिशाओं तक अपना विक्रम दिखला । सारी प्रजाएं तुझे चाहें, तब रस भरे दिव्य जल तुझे चाहें (तेरा अभिषेक करें) ।

४—अभि त्वा वर्चसा सिञ्चन्, आपो दिव्याः पयस्वतीः । यथाऽसोमित्रवर्धनः, तथा त्वा सविता करत् । ६ ।

रस भरे दिव्य जल दिव्य तेज के साथ तेरा अभिषेक करें और परमात्मा तुझे वैसा बनावे जैसे कि तू मित्रों के बढाने वाला बने ।

५—इमं देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठयाय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इम ममुष्यपुत्र ममुष्यै पुत्रमस्यै विश एषवोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा । (यजु १० । १८)

हे देवो ! यह जो उस (पिता) का और उस (माता) का पुत्र है, इसे शत्रुरहित बनाओ महिमा वाले क्षत्रबल के लिए, महिमा वाले बड़प्पन के लिए, महिमा वाले जनशासन

के लिए और इन्द्र के बल के लिए। (हे अमुक जातियो!) यह तुम्हारा राजा है, सोम हम ब्राह्मणों का राजा है।

६—देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्येनाभिषिञ्चामीन्द्रियस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभिषिञ्चामि। (यजु० २०। ३)

सविता देव की प्रेरणा में अश्वियों की भुजाओं से पूषा के हाथों से अश्वियों के चिकित्साकर्म से तेज (प्रताप) और ब्रह्मवर्चस के लिए तुझे अभिषिक्त करता हूं, सरस्वती के चिकित्साकर्म से शक्ति स्वास्थ्य के लिए तुझे अभिषिक्त करता हूं, इन्द्र के इन्द्रियबल से बल श्री और यश के लिए तुझे अभिषिक्त करता हूं।

७—कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा काय त्वा। सुश्लोक सुमंगल सत्यराजन्। ४।

आप कौन हैं किन में से हैं (यह अनुभव करें) किस प्रयोजन के लिए (आप को अभिषिक्त करता हूं) सर्वत्र आनन्द फैलाने के लिए (अभिषिक्त करता हूं) हे पवित्र यश वाले

हे शुभ मंगल लाने वाले हे सच्चे राजन् ! (उत्तर में राजा कहता है—)

८—शिरो मे श्रीर्यशोमुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि । राजा मे प्राणो अमृतꣳ सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् । ५ ।

मेरा सिर (राष्ट्र की) श्री है, मेरा मुख (राष्ट्र का) यश है, मेरे बाल और मूछें (राष्ट्र) का तेज है, मेरा प्राण जो राष्ट्र के लिए अमृत का काम दे (राष्ट्र का) राजा हो, मेरा नेत्र सम्राट है और श्रोत्र विराट् है ।

९—जिह्वा मे भद्रं वाङ् महो मनो मन्युः स्वराड्भामः । मोदाः प्रमोदा अङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः । ६ ।

मेरी जिह्वा (राष्ट्र की) भलाई है, मेरी वाणी राष्ट्र की महिमा है, मेरा मन (राष्ट्र का) मन्यु है और मेरा क्रोध राष्ट्र का स्वराट् है, मेरी अंगुलियें मोद हैं और अंग प्रमोद हैं, मेरा मित्र साहस है ।

१०—बाहू मे बलमिन्द्रियꣳ हस्तौ मे कर्म वीर्यम् । आत्मा क्षत्र मुरो मम । ७ ।

मेरी दोनों भुजाएं बल और इन्द्रियशक्ति हैं, मेरे दोनों

हाथ राष्ट्र का कर्म हैं, मेरा धड़ राष्ट्र की वीरशक्ति है, मेरी छाती राष्ट्र का क्षत्रबल है।

११—पृष्ठीर्मेराष्ट्र मुदरमंऽसौ ग्रीवाश्च श्रोणी ।
ऊरू अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः ।८।

मेरी पीठ राष्ट्र है, मेरा उदर, कन्धे, ग्रीवा, श्रोणि, रानें, अरत्नियें, गोड़े और मेरे सारे ही अंग राष्ट्र के लोग हैं।

१२—प्रतिक्षत्रे प्रतितिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रतितिष्ठामि गोषु । प्रत्यङ्गेषु प्रतितिष्ठाम्यात्मन् प्रतिप्राणेषु प्रतितिष्ठामि पुष्टे प्रति द्यावापृथिव्योः प्रतितिष्ठामि यज्ञे । १० ।

मैं क्षत्रबल में दृढ़ खड़ा होता हूं, मैं राष्ट्र में दृढ़ खड़ा होता हूं, मैं घोड़े और गौओं (वृद्धि पुष्टि में) दृढ़ खड़ा होता हूं, मैं (राज्य के) अंगों और सारे शरीर में दृढ़ खड़ा होता हूं, मैं प्राणों में दृढ़ खड़ा होता हूं, मैं (प्रजा के) पोषण में दृढ़ खड़ा होता हूं, मैं आकाश पृथिवी में दृढ़ खड़ा होता हूं, मैं यज्ञ में दृढ़ खड़ा होता हूं।

अभिषेक के अनन्तर पुरोहित का आशीर्वाद—

१३—आ त्वा हार्षमन्तरेधि, ध्रुवस्तिष्ठाऽविचा-

चालिः । विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु, मा त्वद् राष्ट्रमधिभ्रशत् । १ । (ऋ० १० । १७३)

मैंने तुझे चुना है, तू हमारे मध्य में अधिपति हो, कभी न हिलने डोलने वाला अपनी मर्यादा पर टिक कर खड़ा हो, प्रजाजन तुझे प्यार करें, तुझ से राष्ट्र कभी न फिसले ।

१४—इहैवैधि मा ऽपच्योष्ठाः, पर्वत इवाचाचालिः । इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठ, इह राष्ट्रमु धारय । २ ।

यहां टिका रह, कभी मत फिसल, पर्वत की नाईं अत्यन्त अचल बन, इन्द्र की नाईं टिक कर खड़ा हो और राष्ट्र को संभाले रख ।

१५—इममिन्द्रोऽदीधरत्, ध्रुवं ध्रुवेण हविषा । तस्मै सोमोऽधिब्रवत्, तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः ।३।

इन्द्र इस को अटल यज्ञ (प्रजा पालन) से अटल धारण करे, सोम और बृहस्पति इसको आशीर्वाद दे ।

१६—ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी, ध्रुवासः पर्वता इमे । ध्रुवं विश्वमिदं जगत्, ध्रुवो राजा विशामयम् । ४ ।

द्यौ (अपने नियम पर) अटल है, पृथिवी अटल है,

पर्वत अटल हैं, यह सारा जगत् अटल है (जैसे ये अटल हैं) वैसे प्रजाओं का यह राजा अटल हो।

१७–ध्रुवं ते राजा वरुणः, ध्रुवं देवो बृहस्पतिः। ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च, राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् । ५।

राजा वरुण तेरे राष्ट्र को दृढ़ धारण करे, बृहस्पति देव तेरे राष्ट्र को दृढ़ धारण करे, इन्द्र और अग्नि तेरे राष्ट्र को दृढ़ धारण करें।

१८–ध्रुवं ध्रुवेण हविषा, अभि सोमं मृशामसि। अथो त इन्द्र केवलीः, विशो बलिहृतस्करत् ।६।

अटल यज्ञ से हम अटल सोम को स्पर्श करते हैं, जिस से इन्द्र तेरी प्रजाओं को निरा तेरी करप्रद बनावे।

युद्ध उपस्थित होने पर प्रार्थना तथा राजा और सैनिकवीरों का प्रोत्साहन—

१९–इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं मे, इमं विशामेकवृषं कृणु त्वम्। निरमित्रानक्ष्णुह्यस्य सर्वान्, तान् रन्धयास्मा अहमुत्तरेषु । (अथर्व ४। २२। १)

हे इन्द्र मेरे इस क्षत्रिय को बढ़ा, इस को लोगों में अद्वितीय शक्तिमान् बना, इसके सारे शत्रुओं को भगा, इनको इस के वश में ला।

२०–एमं भज ग्रामे अश्वेषु गोषु, निष्टं भज यो अमित्रो अस्य। वर्ष्म क्षत्राणामयमस्तु राजा, इन्द्र शत्रुं रन्धय सर्वमस्मै । २ ।

इस को ग्रामों घोड़ों और गौओं में भागी बना और उस को अभागी बना जो इस का अमित्र है, यह राजा क्षत्रों का सिर हो, हे इन्द्र हरएक शत्रु को इस के वश में ला।

२१–अयमस्तु धनपतिर्धनानाम्, अयं विशां विश्पतिरस्तु राजा। अस्मिन्निन्द्र महि वर्चांसि धेहि, अवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य । ३ ।

यह राजा धनों का धनपति हो, यह नरों का नरपति हो। हे इन्द्र ! इस में महिमा वाले तेज स्थापन कर और इसके शत्रु को निस्तेज बना।

२२–अस्मै द्यावापृथिवी भूरि वामं, दुहाथां घर्मदुघे इव धेनू। अयं राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात्, प्रियो गवामोषधीनां पशूनाम् । ४ ।

इस के लिए द्यौ और पृथिवी घर्म दुहाने वाली धेनुओं की नाईं प्रभूत धन दुहाएं। यह राजा इन्द्र का, गौओं का ओषधियों का पशुओं का प्यारा हो।

२३–युनज्मि त उत्तरावन्तमिन्द्रं, येन जयन्ति न परा जयन्ते । यस्त्वा करदेकवृषं जनानाम्, उत राज्ञामुत्तमं मानवानाम् । ५ ।

मैं विजयशील इन्द्र को तेरा साथी बनाता हूं जिस के साथ जीतते हैं कभी नहीं हारते, जो तुझे मनुष्यों में अद्वितीय शक्तिशाली तथा राजाओं और मनुष्यों में उत्तम बनावे ।

२४–उत्तरस्त्वमधरे ते सपत्नाः, ये केच राजन् प्रतिशत्रवस्ते । एकवृष इन्द्रसखा जिगीवान्, शत्रूयतामाभरा भोजनानि । ६ ।

तू ऊपर हो तेरे शत्रु नीचे हों जो कोई हे राजन् तेरे प्रतिशत्रु हैं । तू इन्द्र के साथ अद्वितीय शक्तिमान् हो कर विजय पाता हुआ शत्रुता करने वालों के भोगों को लेआ ।

२५–संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना, युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना । तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्वम्, युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ।

(१० । १०३ । २)

हे वीर योद्धाओ ! तुम त्राहि २ करा देने वाले, अनथक काम करने वाले, जयशील, रण डालने वाले, कभी न फिसलने वाले और सब को दबा लेने वाले, हाथों में बाण धारे हुए

शक्तिमान् इन्द्र के साथ मिल कर युद्ध को जीतो युद्ध पर प्रबल आओ।

२६—बृहस्पते परिदीया रथेन, रक्षोहाऽमित्राँ अपबाधमानः। प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्, अस्माकमेध्यविता रथानाम् । ४ ।

हे बृहस्पते ! रथ पर चढ़ कर राक्षसों को मारता और शत्रुओं को दूर भगाता हुआ चारों ओर घूम। दलों को छिन्न भिन्न करता हुआ नष्ट विनष्ट करदे और युद्ध में विजय पाता हुआ हमारे रथों का रक्षक हो।

२७—बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः, सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः । अभिवीरो अभिसत्वा सहोजाः, जैत्रमिन्द्र रथ मातिष्ठ गोवित् । ५ ।

हे इन्द्र ! तुम बल के पहचानने वाले पुराने अनुभवी बड़े शूरवीर, उत्साह और साहस से भरे हुए, सहने वाले, तेजस्वी वीरों से घिरे हुए, बड़े मनस्वी, स्वभावसिद्ध पराक्रमी हो, इस जैत्र रथ पर चढ़ो और भूमि को जीतो।

२८—गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं, जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा । इमं सजाता अनुवीरयध्वम्, इन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् । ६ ।

हे सजातियो हे साथियो ! दलों के तोड़ने वाले, पर्वतों के फोड़ने वाले, भूमि को जीतने वाले, भुजाओं में वज्र लिए, बल से शत्रुओं का संहार करते हुए इस इन्द्र के साथ तुम बराबर की वीरता दिखलाओ, बराबर का उत्साह और उद्योग दिखलाओ ।

२९-अभिगोत्राणि सहसा गाहमानः, अदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः । दुश्च्यवनः पृतनाषाळ-युध्यः, अस्माकं सेना अवतु प्रमत्सु । ७ ।

अपने साहस के साथ शत्रुदलों को चीरता हुआ, क्रोध से लालोलाल हुआ, स्वयं अजेय होकर सेनाओं का विजेता, युद्ध में सामना करने के अशक्य, शत्रुओं पर निर्दय, वीर इन्द्र युद्धों में हमारी सेनाओं की पूरी रक्षा करे ।

३०-उद्धर्षय मघवन्नायुधानि, उत्स त्वनां माम कानां मनांसि । उद् वृत्रहन् वाजिनां वाजि-नानि, उद् रथानां जयतां यन्तु घोषाः ।१०।

हे शक्तिमन् ! अपने शस्त्रों को चमका और मेरे सैनिकों के मन चमका, हे रुकावटों के तोड़ने वाले घोड़ों के वेग चमका, जिस से कि विजय पाते हुए हमारे रथों की ध्वनि आकाश में गूंज जाय ।

३१–अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेषु, अस्माकं या इषवस्ता जयन्तु । अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु, अस्माँ उ देवा अवता हवेषु । ११ ।

झंडों का मिलाप होने पर इन्द्र हमारा रक्षक हो, हमारे बाण विजय पाएं, हमारे वीर बढ़ कर रहें, हे देवताओ संग्रामों में हमारी रक्षा करो ।

३२–प्रेता जयता नरः, इन्द्रो वः शर्म यच्छतु । उग्रा वः सन्तु बाहवः, अनाधृष्याः यथाऽसत् ।१२

हे शूरवीरो बढ़ो और जीतो इन्द्र तुम्हें शरण दे,तुम्हारी भुजाएं उग्र हों जिस से तुम किसी से न दबाए जा सको ।

३३–स्वस्तिदा विशस्पतिः, वृत्रहा वि मृधो वशी । वृषेन्द्रः पुर एतु नः, सोमपा अभयंकरः ।

(१० । १५२ । २)

कल्याणदाता प्रजाओं का पति, रुकावटों के हटाने वाला संग्रामकारी, सब को वश में करने वाला, अभय करने वाला शक्तिमान् इन्द्र हमारे आगे चले ।

३४–वि न इन्द्र मृधो जहि, नीचा यच्छ पृत-

न्यतः । यो अस्माँ अभिदासति, अधरं गमया तमः । ४ ।

हे इन्द्र संग्रामों को दूर हटा, हमारे विरुद्ध सेना लाने वालों को नीचा दिखला, जो हमें दास बनाने का यत्न करता है उस को घने अन्धकार में डाल ।

त्रयोदशःप्रकाशः(सामाजिक जीवन-३)

अशुभ कर्मों से सदा हटे रहकर शुभ कर्मों में प्रवृत्त रहना चाहिये—

१—इन्द्र क्रतुं न आभर, पिता पुत्रेभ्यो यथा । शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि, जीवा ज्योतिरशीमहि । (ऋ० ७ । ३२ । २६)

हे इन्द्र ! हमें समझने और करने की शक्ति दे जैसे पिता पुत्रों को देता है, हे सब से पुकारे जाने वाले इस यात्रा में शिक्षा दे, जिस से जीते रह कर ज्योति को प्राप्त करें ।

२—मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यः, माशिवासो अवक्रमुः । त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपः, अति शूर तरामसि ।२७।

मत कोई अज्ञात दुर्जन अशुभचिन्तक पापी हमें दबावें, तेरी सहायता से हे शूर नीचे को दौड़ती हुई सारी बाढ़ों को हम तैर जाएं ।

३–अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः, पतिरिपो न जनयो दुरेवा । पापासः सन्तो अनृता असत्याः, इदं पदमजनता गभीरम् । (ऋ० ४।५।५)

भाइयों से हीन युवतियों की नाईं भटकते हुए, पतियों से द्वेष करने वाली स्त्रियों की नाईं दुराचारी, झूठे, अविश्वसनीय पुरुष अपने लिए आप गढ़ा खोदते हैं ।

४–न मा मिमेथ न जिहीळ एषा, शिवा सखिभ्यः उत मह्यमासीत् । अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोरनुव्रतामप जाया मरोधम् ।

(ऋ० १० । ३४ । २)

(जुए के अनिष्ट फल जुआरिये के मुख से–) (मेरी पत्नी जो) न मुझे तंग करती, न क्रोध करती, मेरे लिए और मेरे मित्रों के लिए भली थी, ऐसी पतिव्रता पत्नी को एकपरायण कर देने वाले जुए के कारण मैंने तंग किया ।

५–द्वेष्टि श्वश्रूरपजाया रुणद्धि, न नाथितो

विन्दते मर्डितारम् । अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य, नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम् । ३ ।

सास बुरा मनाती है, पत्नी रोकती है, और वह मांगता हुआ किसी सहायक को नहीं पाता, बूढ़े हुए बेच देने योग्य घोड़े के सदृश जुआरिये का उपभोग नहीं पाता हूं ।

६—जाया तप्यते कितवस्य हीना, माता पुत्रस्य चरतः क्वस्वित् । ऋणावा बिभ्यद् धनमिच्छमानः, अन्येषामस्तमुप नक्तमेति । १० ।

जुआरिये की पत्नी (धन मान से) हीन हुई तपती है, माता पुत्र को कहीं भटकता देख तपती है । जुआरिया ऋणी हुआ (उत्तमर्ण से) डरता हुआ धन चाहता हुआ रात को औरों के घर जाता है (चोरी करता है) ।

७—अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व, वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः । तत्र गावः कितव तत्र जाया, तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः । ३ ।

जुआ मत खेल, खेती कर, इसी धन को बहुत मानता हुआ इस में आनन्द मना, हे ! जुआरिये इस में गौएं हैं, (ऐश्वर्य मिलेगा) इस में स्त्री है (स्त्री मिलेगी, सती रहेगी और प्यार करेगी) यह रहस्य मुझे स्वामी सविता ने प्रकाशित किया है ।

छल कपट झूठ द्रोह, निन्दा आदिक पापों से बचो—

८—ये पाकसं संविहरन्त एवैः, ये वा भद्रं दूष यन्ति स्वधाभिः। अहये वा तान् प्रददातु सोमः, आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे। (ऋ० ७। १०४।९)

जो किसी सरल को अपनी चालों से मारते हैं और अपनी दुष्ट प्रकृतियों से भले को दोष लगाते हैं, सोम उन को सांप को देवे वा मृत्यु की गोद में देवे।

९—यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने, यो अश्वानां यो गवां यस्तनूनाम्। रिपुः स्तेनः स्तेयकृद् दभ्रमेतु, नि ष हीयतां तन्वा तना च। १०

हे अग्ने! जो हमारे अन्न, गौओं, घोड़ों और शरीर के सार को हानि पहुंचाता है, वह शत्रु, चोर, डाकू शरीर और सन्तान से हीन हो।

१०—सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय, सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते। तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयः, तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत्। १२।

एक विद्वान् पुरुष अच्छी तरह जानता है कि झूठा और सच्चा वचन एक दूसरे की स्पर्धा करते हैं, दोनों में जो सत्य है

अधिक सरल है उसी की सोम रक्षा करता है और जो झूठ है उस का नाश करता है।

११–न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति, न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्। हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्तम्, उभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते। १३।

सोम पापी को सहायता नहीं देता है, न ही उस को जो अपने आप को झूठ ही क्षत्रिय कहता है, वह राक्षस को मारता है और झूठ बोलने वाले को मारता है, दोनों ही इन्द्र की फांस में लटकते हैं।

१२–अया ते अग्ने समिधा विधेम, प्रतिस्तोमं शस्यमानं गृभाय। दहाशसो रक्षसः पाह्यस्मान्, द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात्। (ऋ० ४। ४। १५)

हे अग्ने! इस समिधा से हम तेरी सेवा करते हैं हमारे गाए जाते हुए स्तोत्र को स्वीकार कर। हे मित्रों से पूजनीय! धर्म के विरोधी राक्षसों को दूर हटा और हमें द्रोह, निन्दा और हरएक प्रकार के पाप से बचा। (इस में द्रोह और निन्दा को पाप बतलाया है)।

१३–एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातवः, इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवो अदाभ्यम्। शिशीते शक्रः

पिशुनेभ्यो वधम्, नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ।

(ऋ० ७ । १०४ । २०)

वे हिंस्र दुर्जन उड़ जाते हैं जो दम्भी दम्भ में न आने वाले इन्द्र को भी छलना चाहते हैं । शक्तिमान् इन्द्र चुगलों के लिए शस्त्र को तेज करता है और जादूगरों के लिए वज्र को छोड़ता है (इस में दम्भ, चुगली और यन्त्र मन्त्र को पाप बतलाया है) ।

देश और जाति को अकाल, दरिद्रता और दुर्बलता आदि से बचाना चाहिये—

१४—यत्रेन्द्रश्च वायुश्च, सम्यञ्चौ चरतः सह ।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं, यत्र सेदिर्न विद्यते ।

(यजु० २० । २६)

उस देश को मैं पुण्यदेश मानता हूं, जहां इन्द्र और वायु साथी हो कर चलते है और जहां अकाल दरिद्रता और दुर्बलता नहीं है ।

१५—असौ यो अधराद् गृहः, तत्र सन्त्वराय्यः । तत्र सेदिर्न्युच्यतु सर्वाश्च यातुधान्यः ।

(अथर्व १ । १४ । ३)

अलक्ष्मियें गहरे गढ़े में पड़ें, वहीं अकाल और दुर्बलता जा डूबें और पीड़ा देने वाली सारी कुशक्तियां जा डूबें ।

१६–सेदिरुग्रा व्यृद्धिरार्तिश्चानपवाचना।
श्रमस्तन्द्रीश्चमोहश्च, तैरमूनभिदधामि सर्वान्।
(अथर्व ८।८।९)

भयंकर अकाल और दुर्बलता, अलक्ष्मी, पीड़ा, श्रम, आलस्य, मोह इन सब के समेत सारे शत्रुओं को मार हटाता हूं।

ऋण को अवश्य ही चुका देना चाहिये ऋणी रहकर मरना अधोगति का कारण होता है—

१७–अपमित्यमप्रतीतं यदस्मि, यमस्य येन बलिना चरामि। इदं तदग्ने अनृणो भवामि, त्वं पाशान् विचृतं वेत्थ सर्वान्। (अथर्व ६।११७।१)

चुका देने योग्य न लौटाया गया ऋण जो मेरे ऊपर है, जिस बल वाले ऋण से मैं यम के अधीन हो रहा हूं (बिना चुकाय यम से अवश्य दण्डनीय हूंगा) हे अग्ने! उस से मैं अनृण होऊं, तू सारी फांसों को खोलना जानता है (मुझे उस मार्ग से चला जिस से मैं ऋण की फांसों से छूटूं)।

१८–इहैव सन्तः प्रतिदद्म एनत्, जीवा जीवेभ्यो निहराम एनत्। अपमित्य यज्जघासाहम्, इदं तदग्ने अनृणो भवामि।२।

यहां ही होते हुए ऋण को हम चुकादें, जीते हुए जीते हुओं को चुकादें। पलटा देने की नियत से जो मैंने खाया है हे अग्ने! मैं उस से अनृण होऊं।

१९–अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन्, तृतीये लोके अनृणाः स्याम। ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः, सर्वान् पथो अनृणा आक्षियेम। ३।

इस लोक में हम अनृण हों और परलोक में अनृण हों (लोक ऋण और परलोक ऋण दोनों को उतार दें) और तीसरे लोक (मुक्ति) के विषय में अनृण हों, देवयान और पितृयाण के जो मार्ग हैं उन सब मार्गों में हम अनृण हो कर ऐश्वर्य भोगें।

स्वास्थ्यरक्षा और चिकित्सा

स्वास्थ्य रक्षा और रोगों की चिकित्सा भी सामाजिक जीवन का आवश्यक अंग है, उसके विषय में वेदों में पूरीदृष्टि दिलाई गई है, संक्षेपतः-घर पूर्व कह आए हैं अब शुद्ध वायु का सेवन और वात चिकित्सा बतलाते हैं—

२०–वात अवातु भेषजं, शंभु मयोभु नो हृदे। प्र ण आयूंषि तारिषत्। (ऋ०.१०।१८६।१)

वायु औषध बन कर हमारी ओर बहे, हमारे हृदय के लिए आरोग्य और स्वास्थ्य दे, और हमारी आयुओं को बढ़ाए।

२१—यददो वात ते गृहे, अमृतस्य निधिर्हितः। ततो नो देहि जीवसे । ३ ।

हे वायु तेरे घर में जो अमृत का निधि रक्खा है उस से हमारे जीवन के लिए दे।

शुद्ध जलों का सेवन और जल चिकित्सा—

२२—अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्, अपामुत प्रशस्तये, देवा भवत वाजिनः। (ऋ० १।२४।१९)

जलों के अन्दर अमृत (जीवनीशक्ति) है, जलों के अन्दर औषध है, जलों की उत्तमता के लिए हे ब्राह्मणो उत्साही बनो।

२३—आपः पृणीत भेषजं, वरूथं तन्वे मम। ज्योक् च सूर्यं दृशे । २१ ।

हे जलो! मेरे शरीर में औषध भरो जो कवच का काम दे, और मैं दीर्घ काल सूर्य के दर्शन करूं।

२४—आपो अद्यान्वचारिषं, रसेन समगस्महि। पयस्वानग्न आगहि, तं मा संसृज वर्चसा । २३ ।

मैंने जलों का आज सेवन किया है और उस के सार के साथ मिला हूं, हे जलयुक्त अग्ने आओ और मुझे कान्ति से युक्त करो।

२५–आप इद्वा उ भेषजीः, आपो अमीवचातनीः। आपः सर्वस्य भेषजीः, तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्। (ऋ० १०।१३७।६)

जल निःसंदेह औषध हैं, जल रोगों के नाशक हैं, जल सब के आरोग्य देने वाले हैं वे तेरे लिए आरोग्यप्रद हों।

२६–शं न आपो धन्वन्याः, शमु सन्त्वनूप्याः। शं नः खनित्रमा आपः, शमु याः कुम्भ आभृताः, शिवा नः सन्तु वार्षिकीः। (अथ० १।६।४)

मरु (रेगस्तान) के जल हमारे लिए स्वास्थ्यप्रद हों, (दरया के) काछे के जल हमारे लिए स्वास्थ्यप्रद हों, खोदने से बने (कुओं और नहरों) के जल हमारे लिए स्वास्थ्यप्रद हों, घड़े में भरे जल स्वास्थ्यप्रद हों, वृष्टि के जल हमारे लिए शिव हों।

ओषधियों की शक्ति और वैद्य का आत्मबल—

२७–शतं वो अम्ब धामानि, सहस्रमुत वो रुहः। अधा शतक्रत्वो यूयम्, इमं मे अगदं कृत। (ऋ० १०।९७।२)

हे अम्ब ! (मातृ वत् हित करने वाली ओषधियो) सैंकड़ों तुम्हारे स्थान हैं और सहस्रों तुम्हारे जातिभेद हैं, तुम जो सैंकड़ों शक्तियां वाली हो मेरे इस (रोगी) को नीरोग करो।

२८—यत्रौषधीः समग्मत, राजानः समिताविव । विप्रः स उच्यते भिषग्, रक्षोहाऽमीवचातनः । ६ ।

जहां ओषधियों संग्राम में क्षत्रियों की तरह (रोग के विरुद्ध) संगत हो कर लड़ती हैं, वहां वह ब्राह्मण वैद्य कहलाता है जो रोग के कृमियों को नष्ट कर रोग को दूर भगाता है।

२९—ओषधयः संवदन्ते, सोमेन सह राज्ञा । यस्मै कृणोति ब्राह्मणः, तं राजन् पारयामसि ।२२

ओषधियें अपने राजा सोम के साथ एकमत हो कर घोषणा देती हैं । ब्राह्मण जिस के लिए चिकित्सा करता है उस को हे राजन् (सोम) हम पार लगाएंगी ।

३०—यदिमा वाजयन्नहम्, ओषधीर्हस्त आदधे । आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति, पुरा जीवगृभो यथा ।११

जब मैं (रोगी के नष्ट हुए) बल को लौटाता हुआ इन ओषधियों को हाथ में लेता हूं तो रोग का आत्मा पहले ही नष्ट हो जाता है मानो मृत्यु ने उसे आ पकड़ा है ।

३१–अवपतन्तीरवदन्, दिव ओषधयस्परि।
यं जीवमश्नवामहै, न स रिष्याति पूरुषः।
(ऋ० १०।९७।१७)

द्यौ से नीचे गिरती हुई ओषधियों ने घोषणा दी कि जिसको जीते हुए को हम पहुंच जाएंगी वह पुरुष नहीं मरेगा।

३२–यस्यौषधीः प्रसर्पथ, अङ्गमङ्गं परुष्परुः।
ततो यक्ष्मं विबाधध्वे, उग्रो मध्यमशीरिव।१२।

हे ओषधियो! तुम जिस के अंग २ और पर्व २ में घुस जाती हो, वहां से रोग को ऐसे भगाती हो जैसे दलों के मारने वाला वीर (कायरों को रण से भगाता है)।

३३–याः फलिनीर्या अफलाः, अपुष्पाश्च-याश्च पुष्पिणीः। बृहस्पतिप्रसूता स्ताः, नो मुञ्चन्त्वंहसः।१५।

जो फलवाली हैं जो फलहीन हैं जो पुष्पों वाली हैं और जो पुष्पहीन हैं, बृहस्पति से प्रेरी हुई वे हमें रोग से छुड़ाव।

३४–मा वो रिषत्खनिता, यस्मै चाहं खनामि वः। द्विपच्चतुष्पदस्माकं, सर्वमस्त्वनातुरम् २०

मत तुम्हारा उखाड़ने वाला हानि उठाए और न वह जिस के लिए तुम्हें उखाड़ता हूं, हमारे मनुष्य और पशु सब नीरोग हों ।

मनोबल से सिकित्सा—

३५—आ त्वा गमं शंतातिभिः, अथो अरिष्ट-तातिभिः । दक्षं त उग्रमा भारिषं, परा यक्ष्मं सुवामि ते । (ऋ० १० । १३७ । ४)

कल्याण देने वाली और आरोग्य देने वाली शक्तियों के साथ मैं तेरे पास आगया हूं, मैं तेरे लिए उग्र बल को लाया हूं, तेरे रोग को दूर धकेलता हूं ।

३६—अयं मे हस्तो भगवान्, अयं मे भग-वत्तरः । अयं मे विश्वभेषजः, अयं शिवाभि-मर्शनः । (अथर्व ४।१३।६)

यह मेरा हाथ भाग्य वाला है, यह मेरा बढ़ कर भाग्य वाला है, यह मेरा सारे औषधों वाला है, यह छूने से ही कल्याण देने वाला है ।

३७—हस्ताभ्यां दशशाखाभ्याम्, जिह्वा वाचः पुरोगवी । अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्याम्, ताभ्यां त्वाऽभिमृशामसि । ७ ।

मेरी जिव्हा जो शुभ वाक् की मुहरली गौ है उस के द्वारा और दस शाखाओं (अंगुलियों) वाले हाथों, हां आरोग्य देने वाले इन दोनों हाथों के द्वारा तुझे स्पर्श करता हूं।

रोगोत्पादक क्रिमियों को उत्पन्न न होने देना, उत्पन्न हुओं को हानि पहुंचाने से पूर्व ही नाश करना और शरीर में प्रविष्ट हुओं का चिकित्सा द्वारा नाश करना चाहिये—

३८—ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेषु, ओषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः। ये अस्माकं तन्वमा विविशुः, सर्वं तद्धन्मि जन्म क्रिमीणाम्। (अथर्व २।३१।५)

जो कृमि पर्वतों, वनों, ओषधियों, पशुओं और जलों के अन्दर हैं, जो हमारे शरीर में घुसे हैं, कृमियों की उन सारी जातियों को मैं नाश करता हूं।

३९—ये क्रिमयः शितिकक्षाः, ये कृष्णाः शितिबाहवः। ये के च विश्वरूपाः, तान् कृमीन् जम्भयामासि। (अथर्व ५।२३।५)

जो क्रिमि नीली बगलों वाले जो काले नीली भुजाओं वाले जो कोई भी अनेक प्रकार के क्रिमि हैं उन क्रिमियों को हम नाश करते हैं।

४०—सर्वेषां च क्रिमीणाम्, सर्वासां च

क्रिमीणाम्। भिनद्म्यश्मना शिरः, दहाम्यग्निना मुखम्। १३।

सारे नर क्रिमियों के और सारी नारी क्रिमियों के सिर को मैं पत्थर से कुचलता हूं और मुख को अग्नि से जलाता हूं।

४१–हतासो अस्य वेशसः, हतासः परिवेशसः। अथो ये क्षुल्लका इव, सर्वे ते क्रिमयो हताः।

(अथर्व २। ३२। ५)

इनके मुख्य और गौण अड्डे सारे नष्ट कर दिये गए हैं जो अतीव सूक्ष्मसे हैं वे सभी क्रिमि नष्ट कर दिये गए हैं।

४२–यो अक्ष्यौ परिसर्पति, यो नासे परिसर्पति। दतां यो मध्यं गच्छाति, तं क्रिमिं जम्भयामसि।

(अथर्व ५। २३। ३)

जो आंखों में रींगता है जो नासों में रींगता है जो दांतों के मध्य में जाता है उस कृमि को हम नाश करते हैं।

४३–उत्पुरस्तात् सूर्य एति, विश्वदृष्टो अदृष्टहा। दृष्टांश्चघ्नन्नदृष्टांश्च, सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन्। ६।

पूर्व में सूर्य उदय होता है जो सब से देखा जाता है पर वह उन क्रिमियों को भी नष्ट करता है जो देखे नहीं जाते, वह देखे

जाते हुए और न देखे जाते हुए क्रिमियों को मारता है।

४४—उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु, निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः। ये अन्तः क्रिमयो गवि।

(अथर्व २। ३२। १)

उदय होता हुआ और अस्त होता हुआ सूर्य रश्मियों से उन क्रिमियों को नाश करे जो भूमि के अन्दर हैं।

परस्पर की (दीनों अनाथों की दया भाव से और इष्ट मित्रों बन्धु बान्धवों की प्रेमभाव से) सहायता—

४५—न वा उ देवाः क्षुधमिद् वधं ददुः, उताशितमुपगच्छन्ति मृत्यवः। उतो रयिः पृणतो नोपदस्यति, उतापृणन् मर्डितारं न विन्दते।

(ऋ० १०। ११७। १)

देवताओं ने भूख को ही मृत्यु नहीं बनाया, तृप्त होकर खाने वाले को भी मृत्यु आ पकड़ती है। इधर देने वाले का धन खुट (चुक) नहीं जाता, उधर जो देने से मुंह मोड़ता है वह अपने लिए सहायक नहीं पाता है।

४६—य आध्राय चकमानाय पित्वः, अन्नवान्त्सन् रफितायोपजग्मुषे। स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरा, उतो चित् स मर्डितारं न विद्यते।२

वह जो अन्नवान् होकर, रोटी की कामना से शरण में

आए दीन, अनाथ और दुखिया के लिए मन कड़ा कर लेता है और उस के सामने (स्वयं) भोगता है, वह कभी अपने लिए सहायक को नहीं पाता है।

४७—स इद् भोजो यो गृहवे ददाति, अन्न-कामाय चरते कृशाय। अरमस्मै भवति यामहूतौ, उतापरीषु कृणुते सखायम्। ३।

उदार वही है जो दुर्बल हो घूमते हुए अन्नार्थी पात्र को अन्न देता है, ऐसे पुरुष को युद्ध के बुलावे में सिद्धि मिलती है और विरोधियों में भी मित्र मिलते हैं।

४८—न स सखा यो न ददाति सख्ये, सचाभुवे सचमानाय पित्वः। अपास्मात् प्रेयान्न तदो को अस्ति, पृणन्तमन्य मरणं चिदिच्छेत्। ४।

वह मित्र नहीं जो साथ होने वाले हिले मिले मित्र को (सहायता के समय) सहायता नहीं देता है। उस से वह अलग हो जायगा क्योंकि वह उस का ठिकाना नहीं रहा, वह किसी दूसरे सहायता देने वाले को ढूंढेगा चाहे वह पराया हो

४९—पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्, द्राघीयांस मनु पश्येत पन्थाम्। ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा, अन्यमन्यमुपतिष्ठन्त रायः। ५।

समर्थ को चाहिये कि अर्थी याचक को अवश्य कुछ

देवे, अपनी दृष्टि को बड़े लम्बे मार्ग पर रक्खे, क्योंकि धन रथ के पहिये की तरह घूमते हैं आज एक के पास हैं तो कल दूसरे के पास जाते हैं।

५०—मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः, सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य। नार्यमणं पुष्यति नो सखायं, केवलाघो भवते केवलादी। ६।

वह मूर्ख अन्न को व्यर्थ प्राप्त करता है जो न ईश्वर के नाम पर देता है न ही मित्र को सहायता देता है मैं सत्य कहता हूं वह उस की मौत है अकेला खाने वाला निरा पापी होता है।

५१—कृषन्नित् फाल आशितं कृणोति, यन्न ध्वानमपवृङ्क्ते चरित्रैः। वदन् ब्रह्माऽवदतो वनीयान्, पृणन्नापिरपृणन्त माभि ष्यात्। ७।

भूमि को उथलता हुआ ही फाला खुराक को उत्पन्न करता है, चलता हुआ पुरुष अपने पाओं से मार्ग को काटता है, सच कहता हुआ ब्राह्मण चुप रहते हुए से श्रेष्ठ है, ऐसे ही सहायता देता हुआ बन्धु सहायता न देने वाले को मात कर देगा *।

५२—एकपाद्भूयो द्विपदो विचक्रमे, द्विपात्

---

* जैसे फाले की सफलता भूमि को उथलने, पाओं की चलने और ब्राह्मण की सच कहने में ही है इसी प्रकार धन की सफलता किसी को सहायता देने में ही हैं।

त्रिपादमभ्येति पश्चात् । चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे, संपश्यन् पङ्क्ती रुप तिष्ठमानः । ८ ।

एक पाओं वाला दो पाओं वाले से आगे निकल जाता है, दो पाओं वाला तीन पाओं वाले को पीछे छोड़ जाता है, चार पाओं वाला दो पाओं वालों के बुलाने पर उन की पांचों (अंगुलियों) की ओर देखता हुआ उनके सामने आ खड़ा होता है* ।

५३–समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः, संमातरा चिन्न समं दुहाते । यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि, ज्ञाती चित् सन्तौ न समं पृणीतः ।९।

दोनों हाथ एक जैसे होते हुए भी एक बराबर काम नहीं करते, दो धेनुएं भी एक बराबर दूध नहीं देती हैं, जौड़े उत्पन्न हुओं की भी शक्तियां एक बराबर नहीं होतीं, वैसे ही एक जैसे बन्धु होकर एक जैसी सहायता नहीं देते † ।

---

* पशु चार पाओं रखते हुए दो पाओं वालों के पाओं की ओर देखते हैं और वृद्ध पुरुष तीन पाओं (तीसरा पाओं लाठी) रखता हुआ भी युवक से पीछे ही रहता हैं, ऐसे ही संभव है कि धन न रखता हुआ भी हृदय का उदार पुरुष गुणों में धनवान् से आगे बढ़ा हुआ हो, इसलिए धनी को अपने धन के अभिमान में किसी का अनादर वा घृणा नहीं करनी चाहिये ।

† सहायता देने में किसी की रीस नहीं करनी चाहिये, जिस को भगवान् ने समर्थ बनाया है और सहायता देने वाला हृदय दिया हैं वह क्यों दूसरों की कदर्यता की ओर देखे ।

सामाजिक मर्यादाएं बांधने की व्यवस्था और सामाजिक एकता—

५४–संगच्छध्वं संवदध्वं, सं वो मनांसि जानताम् । देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते । (ऋ० १० । १९१ । २)

आपस में मिलो, संवाद करो जिस से तुम्हारे मन एक ज्ञान वाले हों, जैसा कि पहले देवता (सृष्टि रचने वाली दिव्य शक्तियां) एक मत होकर अपने २ भाग का सेवन कर रहे हैं।

५५–समानो मन्त्रः समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तमेषाम् । समानं मन्त्र मभिमन्त्रये वः, समानेन वो हविषा जुहोमि । ३ ।

तुम्हारा मन्त्र एक हो, सभा एक हो, मन एक हो और सोच विचार एक हो, एक ही (सब की भलाई का सांझा) लक्ष्य तुम्हारे सामने रखता हूं और तुम्हारे सांझे त्याग (हवि) से तुम्हारे लिए होमता हूं ।

५६–समाना व आकूतिः, समाना हृदयानि वः । समानमस्तु वो मनः, यथा वः सुसहासति ।४।

तुम्हारा संकल्प (इरादा) एक हो, तुम्हारा हृदय एक हों और तुम्हारा मन एक हो जिस से तुम्हारा शुभ मेल सदा बना रहे । (प्रथम भाग समाप्त)